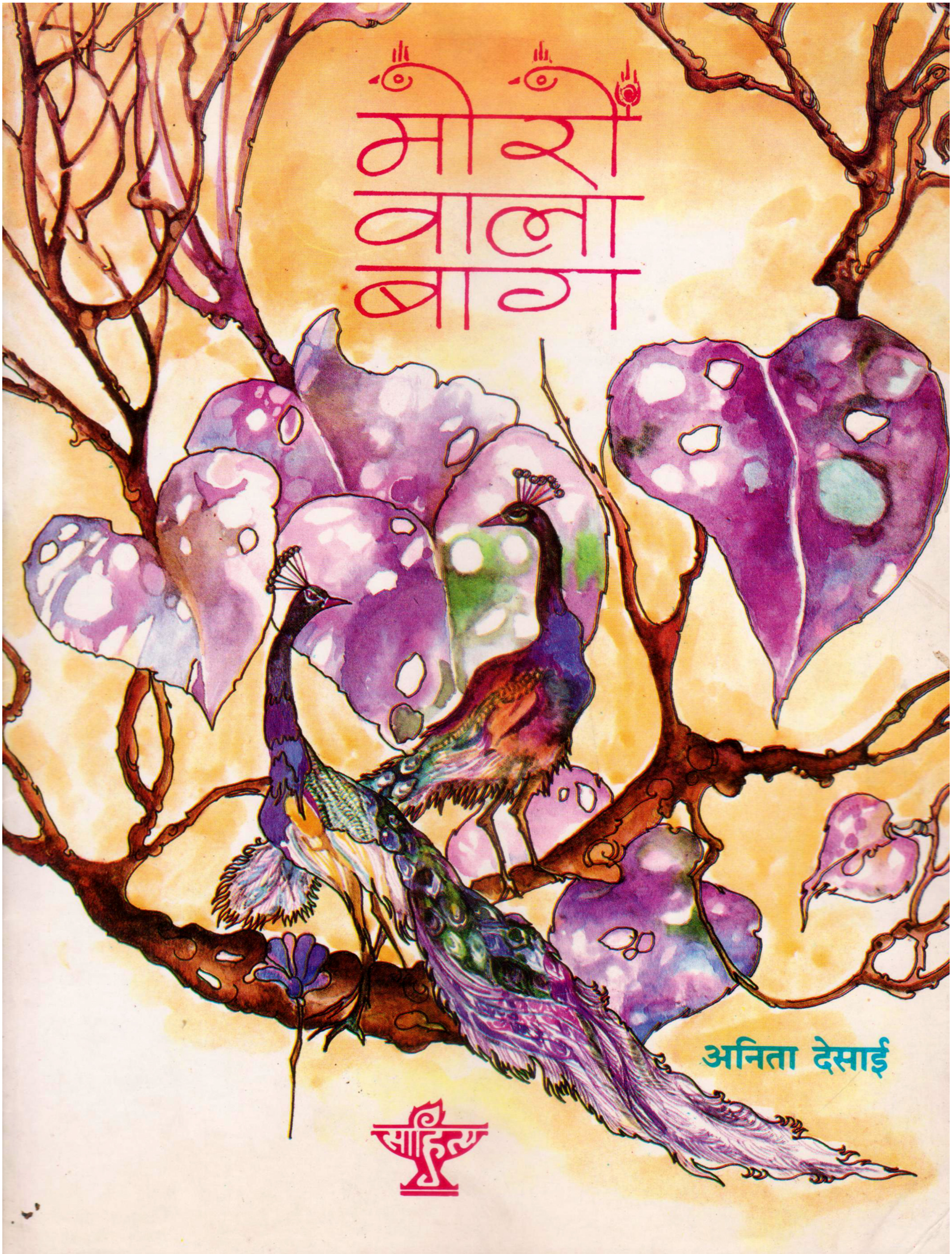
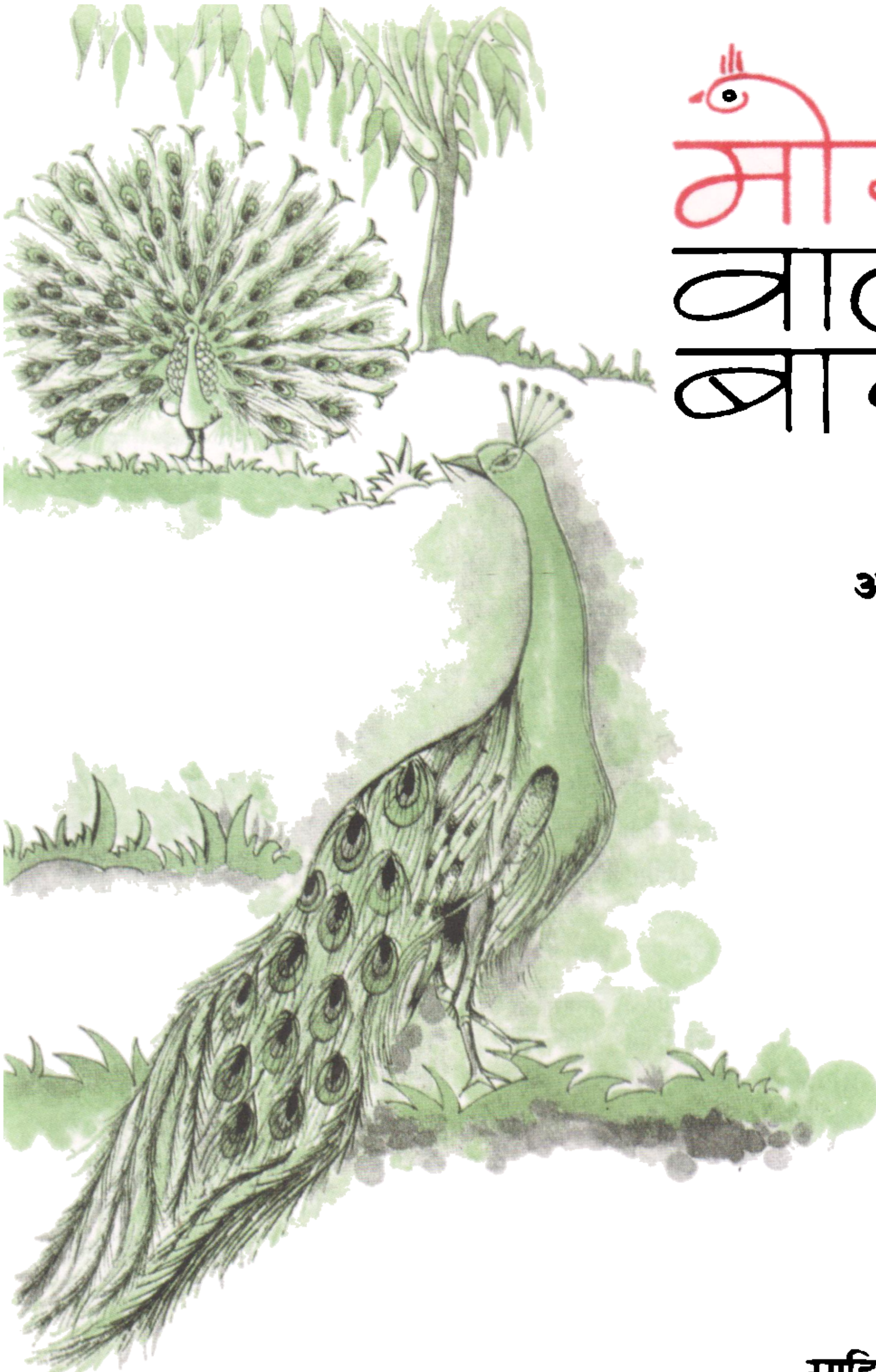
मोरों वाला बाग

अनिता देसाई



साहित्य

मोरों वाला बाग़



अनिता देसाई

विमला मोहन

गीता वडेरा

साहित्य अकादेमी

Moron Wala Bagh: Hindi translation by Vimala Mohan of Anita Desai's novel in English *The Peacock Garden* for children. Sahitya Akademi, New Delhi (2008), Rs.30

प्रथम संस्करण: 1993
पुर्नमुद्रण: 1995, 2005, 2008 (तृतीय)

साहित्य अकादेमी

मुख्य कार्यालय : रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली–110 001

विक्रय विभाग : 'स्वाति', मंदिर मार्ग, नई दिल्ली–110 001

E-mail: sahityaakademisales@vsnl.net
Website: www.sahitya-akademi.gov.in

क्षेत्रीय कार्यालय

172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई–400 014

सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. आंबेडकर वीथी, बंगलौर–560 001

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर मार्ग, कोलकाता–700 053

चेन्नई कार्यालय

मेन बिल्डिंग, गुना बिल्डिंग्स (द्वितीय तल), 443(304), अन्नासालइ, तेनामपेट, चेन्नई–600 018

मूल्य: तीस रुपये

ISBN: 81-7201-491-0

मुद्रक: वेलविश प्रिण्टर्स, दिल्ली

1947 की गर्मियों में बारिश बहुत देर से हुई थी। पंज़ाब के एक छोटे से गाँव बस्सी पठाना में बेहद गर्मी पड़ रही थी। हर दिन, पहले दिन से अधिक गर्म लगता था। ज़मीन झुलस गयी थी और घास तक का नामोनिशान मिट गया था। खेतों में आड़ी-तिरछी लकीरें बनानेवाला नहरों का पानी अब सूख चुका था और मिट्टी में ऐसी दरारें पड़ गयी थीं मानों गुलाबी खपरैलों की परत बिछी हो। सूरज के धूल से ढके होने की वजह से आसमान पीला दिखायी पड़ता था।

रातें तो इतनी गर्म हो गयी थीं कि नींद भी आनी कठिन थी। अप्रैल के महीने में उस परिवार ने आँगन में सोना शुरू कर दिया था, जिससे उन्हें कुछ ठण्डी हवा मिल सके। वे लोग मई के महीने में बिस्तरों को घर की छत पर ले आये, जहाँ उन्हें आमों के बाग़ की तरफ़ से सरसर करती ठण्डी रेशमी हवा के झोंके मिल सकें।

जुलाई के महीने में थोड़ी बारिश शुरू हो गयी थी, जिसके कारण लोगों को रात के समय बिस्तर लपेटकर नीचे आना पड़ता था और बाक़ी रात वहीं गर्मी में काटनी पड़ती थी। जूनी को ये रातें बहुत बुरी लगती थीं, क्योंकि कमरे में बहुत छोटी-सी खिड़की थी। ताज़ी हवा न मिलने के कारण उसका दम घुटता था। वह चाहती थी कि उसे छत पर ही रहने दिया जाता, ताकि वह अपनी धूल भरी गर्म-खुश्क देह पर बारिश की ठण्डी बूँदों की थपकी महसूस कर सके। उसकी मुलायम खाल घमौरियों से ढक गयी थी और उसमें खुजली हो रही थी।

अगस्त के महीने में हालत और भी बुरी हो गयी। लोग बिस्तरों पर करवटें बदलते हुए रातें काटते और छत की मुँडेर पर रखे हुए घड़े से पानी उँड़ेल-उँड़ेल कर पीते रहते थे। गर्मी के दिनों में जब लू चलती थी, तब तो उसी घड़े का पानी गरम और बेमज़ा लगता था।

दूसरे घरों की छतों पर भी लोग चारपाइयों पर पड़े थे, लेकिन वे सो नहीं पा रहे थे। कुछ लोग तारों की धीमी रोशनी में बाँसुरी बजाने बैठ गये। कुछ घबराये हुए धीमे-धीमे फुसफुसा रहे थे और कुछ लोग छतों पर कभी धीरे और कभी जल्दी-जल्दी टहल रहे थे। ज़ूनी ने सोचा कि वे लोग शायद ठण्डी हवा के झोंके या बादल के किसी टुकड़े की तलाश में इस तरह टहल रहे हैं। उसे लगा कि वे शायद किसी की राह देख रहे हैं। लेकिन उसे ठीक पता नहीं था कि उन लोगों को किसी चीज़ का इन्तज़ार था और वे इतने परेशान क्यों थे ?

एक रात काफ़ी देर तक बिस्तर पर करवटें बदलते-बदलते ज़ूनी थककर सोयी ही थी कि



अचानक तेज़ गर्मी और शोर से उसकी आँख खुल गयी। इतनी गर्मी उसने पहले कभी महसूस नही की थी। दूर बाज़ार की ओर से आती हुई आवाज़ें जो कभी धीमी और कभी तेज़ हो जाती थीं, उसे ऐसी महसूस हो रही थीं, जैसे उसकी बग़ल से ही आ रही हों।

"क्या है !" वह एकाएक उठकर बैठ गयी। उसे अपना शरीर गर्मी में झुलसता हुआ महसूस हुआ और उसने देखा कि पड़ोस के आँगन से उठती हुई आग की लपटें होली की आग की तरह आसमान छू रही हैं। तब उसे पता चला कि इतनी अधिक गर्मी की वजह यही है। बालों और चेहरे पर से बहता हुआ पसीना उसके कपड़े भिगो रहा था। वह घबराहट में चीख़ पड़ी—"अब्बा !!"

फ़ौरन ही उसके अब्बा दौड़ते हुए आये। वे ऊँचे क़द के एक तन्दुरुस्त व्यक्ति थे। उनकी दाढ़ी छोटी और काली थी, जो मेंहदी से रँगे जाने की वज़ह से कहीं-कहीं लाल दिखलायी पड़ती थी। उन्होंने जब उसे गोद में उठा लिया तो उसने अपने को थोड़ा सुरक्षित महसूस किया। उसे यह सब बहुत ही अजीब लग रहा था और वह सब कुछ जानने को बैचेन थी।

"क्या हुआ, अब्बा ?" उसने बड़ी बेताबी से पूछा, "क्या अब्दुल्ला मियाँ के घर में आग लग गयी है ?"

"हाँ" उन्होंने धीरे-से कहा, "धीरे बोलो ज़ूनी ! डरो नहीं। मैं तुम्हें यहाँ से ले चलूँगा, पर तुम ख़ामोश रहना—एकदम चुप।"

"क्यों क्यों ?" वह उनकी दाढ़ी के पास मुँह लाकर धीमे-से चीख़ पड़ी, "हम जाकर अब्दुल्ला मियाँ की मदद क्यों नहीं करते ?"

"नहीं, नहीं, वे लोग तो चले गये हैं—वे तो पहले ही जा चुके हैं।" अब्बा ने जवाब दिया।

ज़ूनी की समझ में कुछ भी नहीं आया कि पड़ोसी इस तरह अपना जलता हुआ घर छोड़कर क्यों भाग गये हैं ? वे आग बुझाने के लिये नहीं रुके ?

जब अब्बा उसे गोदी में उठाये, खड़ी सीढ़ी से उतर कर आँगन की ओर से ले जा रहे थे, तभी उसने उनके कन्धों के ऊपर से झाँककर आग को देखा। यह देखकर वह और भी चकरा गयी कि आधी रात को उसकी माँ अपना बुर्क़ा ओढ़े, हाथों में सिलाई मशीन उठाये हुए क्यों खड़ी थी ?

"या अल्लाह," उसने सोचा, "आधी रात को मशीन उठाये वह क्या कर रही है ?" माँ के पीछे ज़ूनी की बड़ी बहन रज़िया भूरे रंग के बुर्क़े में लिपटी, बरतनों की टोकरी उठाये तैयार खड़ी थी।

"अम्मा !!!" डर के मारे ज़ूनी की चीख़ निकल गयी। वह समझ गयी कि वे लोग भी भाग रहे हैं। लेकिन क्यों ? और कहाँ ? और वह भी आधी रात में।

"चुप !" एक काली आकृति ने सँकरे रास्ते से गुज़रते और फुसफुसाते हुए कहा, "आओ, मेरे पीछे-पीछे चले आओ, लेकिन एकदम चुपचाप।"

"वह कौन है ?" ज़ूनी अब्बा के गले से कसकर लिपटते हुए फुसफुसायी।

"यह गोपाल है", अब्बा ने धीरे-से कहा, "वह हमें सुरक्षित स्थान पर ले जा रहा है। और

जूनी ! अब तुम एकदम चुप रहना ! हमें बिल्कुल शोर नहीं करना है।" इतना कहते हुए वे भी दरवाज़े से बाहर निकल आये। अम्मा और रज़िया उनके पीछे चल पड़ीं।

गोपाल, अब्बा के नहर के पासवाले आम के बाग़ की रखवाली करनेवाला आदमी था। वह उनके पालतू जानवरों की देखभाल में मदद करता था और कारोबार के लिये उन्हें बाज़ार भी ले जाता था। ज़ूनी भी, उसके गंजे सिरवाली सफ़ेद कपड़ों में लिपटी आकृति, जो अँधेरे के कारण धुँधली लग रही थी, को पहचान गयी थी। उसके पास टार्च या लालटेन नहीं थी। वह उन सबको खेतों के बीच झाड़ियों में से निकलती सँकरी पगडंडी से ले जा रहा था। वह डगमगाते क़दमों से पगडंडी पर चल रहे थे। सूखी हुई घास और झाड़ियों से रगड़ कर एक ओर तो अम्मा और रज़िया के बुर्क़े सरसराहट की आवाज़ पैदा कर रहे थे, दूसरी ओर रज़िया की टोकरी में बरतनों की हल्की खनखनाहट वातावरण में गूँज जाती थी। सबका सिर झुका हुआ था और ज़ूनी अपना सिर अब्बा के कन्धों पर टिकाये पीछे गाँव की ओर देखती जा रही थी।

उसे एक जगह नहीं, जगह-जगह आग-ही-आग दिखायी दे रही थी। लाल-लाल नारंगी लपटें लपलपाती हुईं आसमान को छू रही थीं। आग की वज़ह से हवा तक गर्म हो उठी थी। ऐसा लग रहा था, मानो सारे गाँव में आग लग गयी हो। ज़ूनी को यह अन्दाज़ तो हो गया था कि इतनी बड़ी आग को बुझाया नहीं जा सकता, क्योंकि उन दिनों कुओं में पानी बहुत कम हो गया था और नहरें बिल्कुल सूख चुकी थीं। क्या यही कारण था वे सब लोग भागे जा रहे थे ? लेकिन वे इतने चुपचाप क्यों थे ? छिप-छिप कर क्यों और किसलिये जा रहे थे ? उसे दूर गाँव से आती हुई चीख़ें भी सुनायी दे रहीं थी। दूर बाज़ार से अज़ीब-सी आवाज़ें आ रही थीं। वे आवाज़ें भयानक ही नहीं, डरावनी भी लग रही थीं।

ज़ूनी ने अपना मुँह अब्बा की दाढ़ी में छिपा लिया, जिससे उसके मुँह से कोई आवाज़ न निकल पड़े। उसके मन में बहुत-से सवाल उठ रहे थे, पर उसे तो चुप रहना था। अब्बा ने अपने मज़बूत हाथों से उसे गोद में उठा रखा था, लेकिन उनके क़दम अँधेरे खेतों के बीच से गुज़रती पगडंडी पर डगमगा रहे थे। उनकी साँस फूल रही थी। ज़ूनी ने उनके मुँह पर बहते हुए पसीने को महसूस किया जो उनकी दाढ़ी और गरदन से होता हुआ टपक रहा था। ज़ूनी बार-बार गोपाल को देखती जा रही थी, जो उनको रास्ता दिखाता हुआ आगे-आगे चल रहा था। अम्मा और रज़िया पर भी वह जब तब नज़र डाल लेता था, यह देखने के लिये कि वे दोनों पीछे-पीछे सुरक्षित आ रही हैं। सब-के-सब अँधेरे में एक दूसरे से सटकर चल रहे थे।

ज़ूनी ने गाँव के आवारा कुत्तों को खेतों में ज़ोर-ज़ोर से भौंकते हुए सुना। लगता था कि वे रो रहे हैं। कहीं दूर नहर के पास से गीदड़ों ने उनकी आवाज़ में आवाज़ मिला दी। फिर तो उनकी आवाज़ और भी डरावनी और दर्द-भरी हो गयी थी। उन्हें भी पीछे की ओर आसमान में आग की भयानक़ और लाल चमक दिखलायी पड़ रही थी।

अचानक उन्हें अपने सामने ऊँची-ऊँची सफ़ेद दीवारें दिखायी दीं। गोपाल ने वहाँ धीरे-से लकड़ी के बड़े दरवाज़े पर दस्तक दी। उसने दरार में अपना मुँह लगाकर फुसफुसाते हुए कुछ कहा, जिससे दूसरी तरफ़ किसी ने बड़ी सावधानी से थोड़ा-सा दरवाज़ा खोल दिया। पहले अब्बा उस अधखुले दरवाज़े से दाखिल हों जूनी के पैर दीवार से रगड़ गये। इसके बाद अम्मा हाँफती हुई मशीन उठाये, अन्दर घुसीं और फिर रज़िया। इसके बाद ही दरवाज़ा बन्द कर दिया गया और चिटखनी लगा दी गयी।

"अरे गोपाल ! ओह, वह तो बाहर ही रह गया है", ज़ूनी ज़ोर से चिल्लायी।

"उसके लिये बाहर कोई ख़तरा नहीं है।" अब्बा ने भारी आवाज़ में कहा। उन्होंने ज़ूनी को ज़मीन पर खड़ा कर दिया और कराहते हुए अपनी कमर सीधी करने की कोशिश करने लगे।

आँगन में चारों ओर घना अँधेरा था। ज़ूनी को चारों तरफ़ केवल सफ़ेद दीवारें ही दिखायी दे रही थीं। बाक़ी सब जगह अँधेरा-ही-अँधेरा था। एक दीया तक नहीं जल रहा था और न ही अब आग की लपटों की रोशनी ही उन तक पहुँच रही थी।

फिर, सफ़ेद कपड़े पहने हुए और झुके हुए जिस आदमी ने सावधानी से उन्हें अन्दर आने दिया था, धीरे-से कहा, "आइये, आपके लिये एक कमरा है। वह उन्हें फ़र्श के ऊपर से ले गया। उसने छोटे-से एक दरवाज़े को खोला जो खुलते समय चरमरा उठा था। उसने उन सबको घास-फूस से भरे एक छोटे और तंग कमरे के अन्दर कर दिया। वहाँ जानवरों की बू आ रही थी। "यहाँ तुम्हें कोई ख़तरा नहीं है,"—वह बुदबुदाया और परछाइयों में कहीं ग़ायब हो गया।

माँ ने ज़ूनी के सिर पर हाथ रखा और उसके गालों को थपथपाते हुए धीरे-से कहा, "ज़ूनी ! अब तुम लेट जाओ और सो जाओ।"

"कहाँ अम्मा ? मुझे तो यहाँ कहीं बिस्तर ही दिखायी नहीं पड़ता।" ज़ूनी रोने लगी।

"भूसे पर, मेरी बच्ची !" माँ ने जवाब दिया और झुककर भूसे को ठीक से बिछाकर उस पर अपना बुर्क़ा डाल दिया। उससे दोनों लड़कियों के लिये बिस्तर-सा बन गया।

वह छोटा बदबूदार और बिना हवा का कमरा तो उनके गाँव के घर वाले कमरे से भी कहीं ज़्यादा गर्म था। ज़ूनी अच्छी तरह जानती थी कि वह वहाँ सो नहीं पायेगी। भूसे के तिनके बुर्क़े को छेदकर ऊपर निकल आये थे। यह देखकर भी ज़ूनी उस पर लेट गयी। लेटने पर उसे जगह-जगह तिनके चुभने लगे। रज़िया भी, सिकुड़ कर गठरी बनी हुई, बिछे हुए बुर्क़े पर डरी-सी लेटी थी। ज़ूनी करवट बदलकर रज़िया के गुदगुदे शरीर का सहारा लेकर लेट गयी और उसके हाथ पर अपना हाथ रखकर वह उससे कुछ पूछना चाहती थी। लेकिन उसे याद ही नहीं आ रहा था कि उसे क्या पूछना है ? वह इतनी थकी हुई थी कि उसे फ़ौरन नींद आ गयी। और अचरज की बात कि नींद भी उसे बहुत गहरी आयी।

अगले दिन सारी बातें ज़ूनी की समझ में आ गयीं। लोगों के बोलने-चालने की आवाज़ें, कपड़े धोने और खाना पकाने की खटपट सुनकर वह जाग उठी। उसने दरवाज़े के बाहर झाँका। धूलभरी बालों की लटें उसके गोरे चेहरे पर बिखरी थीं और उनमें से उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें चमक रही थीं। उसने देखा कि आँगन, जो रात को ख़ाली लग रहा था, अब लोगों से खचाखच भरा है। पोटलियों, टोकरियों तथा बोरियों में भरा उनका सामान इधर-उधर फैला पड़ा है। उसने देखा कि आँगन के दोनों तरफ़ उनके घर की तरह ही बहुत-सी कोठरियाँ हैं। उनमें औरतें और बच्चे भरे हैं और वहीं सब लोग खाना पका रहे हैं। कुछ सो रहे थे और कुछ बंडलों पर बैठे हुए रो रहे थे। मर्द आँगन में खड़े बातें कर रहे थे। अब्बा भी वहीं थे और उनके साथ रातवाला वह छोटा झुका हुआ गोरा आदमी भी था। उसी ने शायद रात को उन सबके लिये दरवाज़ा खोला था।

ज़ूनी ने मुड़कर अम्मा और रज़िया की तरफ़ देखा। गोहरे और भूसे से आग जलाकर वे खाना बनाने की कोशिश कर रही थीं। बर्तन उनके पास थे ही। दोनों ही धूल से भरी और गंदी लग रही थीं। ज़ूनी को लगा कि वे दोनों रात भर सोयी नहीं हैं। उन्होंने हाथ-मुँह भी नहीं धोया है। इससे ज़ूनी को और भी हैरानी हुई।

"अम्मा, क्या हुआ है ? ये सब कौन लोग हैं ?" ज़ूनी धीरे-से फुसफुसायी।

ज़ूनी की अम्मा पीछे हटकर बैठ गयी और बुर्क़े से अपनी आँखें पोंछने लगी। उसकी आँखें लाल हो गयी थीं। उन्होंने इस समय बुर्क़ा अपने कन्धे पर डाल रखा था, जिसमें जगह-जगह तिनके घुसे हुए दिखलायी पड़ रहे थे।

"बेटी, फिर से बाहर झाँककर देखो," उन्होंने बहुत धीरे-से कहा, "तुम्हें पता चल जायेगा कि ये सब लोग हमारे गाँव के ही हैं, कुछ हमारे पड़ोसी ही हैं और कुछ पास के गाँव के हैं—हमारे मुसलमान पड़ोसी। हम सब तकदीरवाले हैं जो रात को आगज़नी और क़ातिलों से बचकर यहाँ भाग आये थे। मौलवी साहब ने हमें यहाँ पनाह दी है। यहाँ मस्जिद में हमें मारने की हिम्मत किसी को भी नहीं होगी।"

"हमें मारने की ?" ज़ूनी ज़ोर से चिल्लायी, "हमें कौन मारना चाहता है ?"

"हिन्दू, मेरी बेटी ? वे हमें मारना चाहते हैं या फिर पाकिस्तान भगा देना चाहते हैं।"

"पाकिस्तान ! वह क्या है ?"

"सरहद के पार ! एक नया देश, मुसलमानों के लिये।"

रज़िया चूल्हे की आग से कुछ पीछे हटकर रोने लगी। शायद धुएँ से या किसी और वजह से। ज़ूनी की समझ में कुछ नहीं आया। इससे वह और भी घबरा गयी, क्योंकि रज़िया उससे दस साल बड़ी थी और उसको रोते हुए उसने कभी नहीं देखा था। ज़ूनी अपनी बहन के पास सटकर बैठ गयी। उसने महसूस किया कि रज़िया सुबक रही है और काँप भी रही है।

"क्या हमें जाना ही पड़ेगा ?" ज़ूनी ने पूछा। वह सोच रही थी कि शायद उसके सिसकने की यही वज़ह है।

"अग़र ख़ुदा की यही मर्ज़ी है", अम्मा ने कहा, "रज़िया, मेरी बेटी, रोना बन्द कर और दाल-चावल साफ़ करने में मेरा हाथ बँटा। जल्दी ही तुम्हारे अब्बा कोई अच्छी ख़बर लेकर आयेंगे," एक गहरी साँस लेकर वे फिर बोलीं, "ख़ुदा की जैसी मर्ज़ी।"

कुछ ही देर में अब्बा आ गये। वह बहुत-ही थके हुए लग रहे थे। ज़ूनी ने उन्हें इतना परेशान कभी नहीं देखा था, सिवाय उस घड़ी के, जिस साल बाढ़ आयी थी और उनके ढोर बह गये थे, साथ ही घर भी ढह गया था। वह भी भूसे और धूल से भरे थे तथा उनके मुँह पर झुर्रियाँ उभर आयी थीं।

"अली का कुछ पता चला ?" अम्मा ने दाल टपकाते चम्मच को हाथ में लिये, बड़ी बेचैनी से पूछा था अली के परिवार के किसी और आदमी के बारे में।

अली वह नौजवान था, जिसके साथ अगले जाड़ों में रज़िया की शादी होने वाली थी। वह गली के नुक्कड़ पर दुछत्ती वाले पीले मकान में रहता था। उनका अपना अनाज का भण्डार था।

अब्बा ने दरवाज़े के बीच में खड़े-खड़े ही अपना सिर हिला दिया। वे बैठे नहीं। "नहीं," उन्होंने कहा, "वे लोग यहाँ नहीं है। मैंने सुना है कि रात को ही वे लोग सरहद की ओर बैलगाड़ी से चले गये हैं। अब तो पाकिस्तान के रास्ते में होंगे।"

अम्मा ने हाथ से अपना मुँह भींच लिया। रज़िया की ओर देखते ही उनकी आँखें भय से फैल गयीं और वे फूट-फूटकर रोने लगीं। उन्हें रोता हुआ देखकर अब्बा अन्दर आ गये और बोले, "चुप हो जाओ, एकदम चुप। रोना नहीं है। कोई शोर नहीं मचाना है। ऐसे बुरे समय में हमें ऐसी बातों को मंजूर करना ही होगा। हमें तो खुशी होनी चाहिये कि वे बचकर निकल गये हैं। जल्दी ही वे ख़तरे से बाहर निकल कर पाकिस्तान पहुँच जायेंगे या पहुँच गये होंगे।"

अब्बा की बात सुनकर अम्मा ख़ामोश हो गयी। अब्बा को सबको ख़ामोश करना आता है—ज़ूनी ने सोचा। अम्मा फिर उतावली हो उठी और कहने लगी, "फिर तो हम सब को भी चलना चाहिये। चलो, हम सब भी बचकर भाग निकलें। मैंने सुना है कि हमें पाकिस्तान ले जाने के लिये लारी आयेगी। उसमें सिपाही भी होंगे, जो रास्ते में हमारी देख-रेख करेंगे।"

यह सुनकर अब्बा सीधे तनकर खड़े हो गये। उनका सिर क़रीब-क़रीब छत को छूने लगा था। उन्होंने बड़ी ज़ोर से साफ़-साफ़ कहा, "नहीं, मैं यहाँ से नहीं भागूँगा। मेरी ज़मीन यहाँ है, मेरे आमों के बाग़ यहाँ हैं, मेरे ढोर यहाँ हैं। मैंने यह तय कर लिया है। मैंने मौलवी साहब से भी बात कर ली है। उन्होंने बताया है कि यहाँ मस्जिद में हम रह सकते हैं। यहाँ कोई ख़तरा नहीं है। सरकार इसकी देखभाल करती है। यहाँ हम पर हमला नहीं हो सकता। मैंने तय कर लिया है कि बाहर सब कुछ ख़ामोश होने तक हम यहीं रहेंगे। जब तक लोग दुबारा होश में न आ जायें, हमारा यहीं रहना ठीक है। हमें अभी अपने घरों को वापिस नहीं जानां चाहिये।"



अम्मा के मुँह से कुछ बात निकलने वाली थी कि अब्बा ने उनकी तरफ़ इस तरह घूरकर देखा कि वे कुछ बोल ही न सकीं। रज़िया चुपचाप घुटनों में सिर दिये बैठी रही। न उसने सिर ऊपर उठाया और न ही कुछ बोली। सिर्फ़ ज़ूनी ही बक-बक कर रही थी।

"क्या हम यहीं रहेंगे अब्बा ? मस्जिद में ही ? हम घर कब जायेंगे ? क्या आप सोचते हैं कि ढोर ठीक-ठाक होंगे ? क्या गोपाल उनकी देखभाल कर रहा होगा ?"

अब्बा ने सिर्फ़ सिर हिला दिया और उसका हाथ पकड़कर चौक में दूसरे परिवारों से मिलाने के लिये ले गये।

ज़ूनी शरणार्थियों के झुण्ड के बीच उनके सामान के ऊपर से होती हुई आगे बढ़ी ही थी कि उसे बहुत-सी लड़कियाँ दिखायी दीं। वे लड़कियाँ गाँव में, उसके साथ स्कूल जाती थीं। उन लड़कियों ने ही उसे पहले देखा और पुकारा, "ज़ूनी !" वह चारों तरफ़ खड़े लोगों के पैरों के बीच से होती और सामान को लाँघती हुई उनके पास पहुँचकर बोली, "अमीना ! ज़ोहरा ! सली ! क्या तुम सब भी रात को यहाँ आ गयी थीं ?"

"हाँ, चित्रा के पिता ने हम सबको बैलगाड़ी में भूसे के नीचे छिपा लिया था और यहाँ ले आये।"

"हरि के पिता ने खेतों को पार करने में हमारी मदद की। उनके हाथ में नंगी तलवार थी। हम पर हमला करनेवाले को वे मार सकते थे। वह तलवार बहुत ही पैनी थी। मैंने उसे छूकर देखा था।"

"देखो, अपने साथ मैं अपनी गुड़िया भी ले आयी हूँ।" अमीना ने कहा। वह ज़ूनी की ही उम्र की गुलाबी गालोंवाली सुन्दर लड़की थी। अपने हाथ में गुड़िया ले भी रखी थी। यह गुड़िया उसने पिछले बसन्त के मेले में से ख़रीदी थी। ये कपड़ों के टुकड़े उसने अपने अब्बा की दर्ज़ी की दुकान से लिये थे।

"इधर, देखो मैं क्या ले आयी हूँ," सलीमा ने अपने नीले दुपट्टे की गाँठ खोलते हुए और उसमें से छोटे-छोटे मिट्टी के खिलौने निकालकर दिखलाते हुए कहा। इनमें एक छोटा-सा पीला केला था, एक छोटा लाल रंग का अनार था, कुछ पके हुए पीले आम, और कुछ धारीदार हरे खरबूजे थे।

अपनी सहेलियों की गुड़िया तथा अन्य खिलौने देखकर ज़ूनी को भी अपनी गुड़िया की याद आ गयी। उसके पास केवल एक ही गुड़िया थी, जिसे उसकी माँ ने चिथड़ों को जोड़-जोड़ कर बनाया था। अम्मा ने उसका मुस्कुराता चेहरा रँग दिया था और उसके सिर पर काली ऊन की दो छोटी-छोटी चुटिया बना दी थीं। रज़िया ने उसके लिये सुन्दर कपड़े सिल दिये थे। ज़ूनी के पास सिर्फ़ वही गुड़िया थी। उसकी गुड़िया का नाम मुमताज था। ज़ूनी, उसे गाँव में ही भूल आयी थी। वह रोना चाहती थी, लेकिन दूसरे बच्चों के सामने वह रो नहीं सकती थी और ज़ूनी इस तरह घूमी जैसे कि घर जा रही हो। उसने चारों तरफ़ ऊँची-ऊँची दीवारें देखीं और दूर कँटीले तारों से ढका लकड़ी का एक बन्द दरवाज़ा देखा।

"ज़ूनी चलो, घर-घर खेलें।" छोटी लड़कियों ने अपने खिलौने बड़ के पेड़ के नीचे मिट्टी पर फैलाते हुए कहा।

लेकिन ज़ूनी ख़ाली हाथ उनके साथ खेलना नहीं चाहती थी। घर में उल्टी पड़ी मुमताज के बारे में वह सोच रही थी। उसका घर, शायद आग से बच गया हो और वह अब भी वहीं हो। अगर घर जल गया होगा तो मुमताज भी उसके साथ ख़त्म हो गयी होगी! "मुझे अम्मां के पास जाना है", उसने कहा और धीरे-धीरे अपनी कोठरी की तरफ़ चल दी।

"आओ, ज़ूनी खेलो," अमीना ने फिर पुकारा, "हम जल्दी ही पाकिस्तान जा रहे हैं। अब्बा कह रहे हैं कि जल्दी ही हमें लेने के लिये बड़ी-बड़ी लारियाँ आने वाली हैं।"

कुछ देर के लिये तो ज़ूनी ने सोचा कि दीवारों से घिरी कोठरी में रहने के बदले लारी में बैठकर नये मुल्क में ज्यादा मज़ा आयेगा। लेकिन फिर उसे कोने में पड़ी मुमताज का ख्याल आ गया। साथ ही, अब्बा के अस्तबल के तगड़े, भूरी आँखोंवाले, सुन्दर सींगोंवाले और चिकनी खालवाले ढोरों का भी। उसे आम के उस बाग़ की भी याद आ गयी, जहाँ रज़िया और वह गर्मियों में आम लेने के लिये जाया करती थीं। नदी में पैर लटकाकर आम चूसती थीं। फिर गुठली चूस-चूस नारंगी गूदे का स्वाद लेती थीं। ज़ूनी को लगा कि अब्बा ने पाकिस्तान जाने के ख़िलाफ़ जो फ़ैसला किया है, वही अच्छा है।

थोड़ी देर में वह अपने छोटे, घुटनभरे कमरे में लौट आयी। वहाँ उसने अम्मा और रज़िया को अकेले बैठे हुए देखा। उन दोनों ने बाहर जाकर दूसरी औरतों के बात करने की भी परवाह नहीं की। वे दोनों सफ़ेद पड़ गयी थीं, साथ ही थकी हुईं और दुखी लग रही थीं। ज़ूनी ने उन्हें कभी ऐसी हालत में नहीं देखा था, ज्यादातर वे दोनों खाना पकाते समय या सिलाई करते समय एक दूसरे से बातें करती रहती तथा हँसती रहती थीं। पर आज वे एकदम चुप थीं। ज़ूनी उनके पास बैठ गयी। गर्मी, शोर तथा चारों तरफ़ की गड़बड़ी से उसका सिर चकरा रहा था।

"अम्मा, मैं अपनी गुड़िया मुमताज को घर पर ही भूल आयी हूँ।" ज़ूनी ने माँ से चिपटते हुए कहा।

"मुमताज ?" उसकी माँ बड़बड़ायी। ज़ूनी को लगा जैसे उसकी माँ ने यह नाम पहले सुना ही न था।

"मेरी गुड़िया, अम्मा !!" ज़ूनी ने उन्हें याद दिलाया।

"गुड़िया !!!" अम्मा ने बेपरवाही से सिर हिला दिया, जैसे उन्हें कुछ और अधिक ज़रूरी चीज़ों के बारे में सोचना हो। "हम और भी बहुत-सी चीज़ें छोड़ आये हैं ज़ूनी !" उन्होंने बहुत गहरी साँस भरते हुए कहा। इससे ज़ूनी को और भी बुरा लगा।

"हम घर वापिस कब जा पायेंगे अम्मा ?" ज़ूनी ने पूछा।

"मैं नहीं जानती मेरी बच्ची, और भी कोई नहीं जानता। अब्बा कहते हैं, जब तक बाहर ख़तरा नहीं टल जाता, तब तक हमें यहीं रहना है।"

"लेकिन हमें वे रहने भी देंगे ? क्यों ? क्या मौलवी साहब हमें यहाँ रहने देंगे ?"

तभी अब्बा सिर झुकाकर अन्दर आ गये, जिससे कि उनका सिर नीचे दरवाज़े से टकरा न जाये। ज़ूनी का सवाल उन्होंने सुन लिया था। उन्होंने जवाब दिया, "हाँ, मौलवी साहब ने हमें यहाँ एक घर देने का वायदा किया है, इस कमरे से अच्छी जगह। मुझे उनके ढोरों की और नींबू के पेड़ों की देखभाल करनी होगी। सब कुछ ठीक हो जाने तक वे हमें यहाँ रहने देंगे।"

"और ये दूसरे सब लोग ?" चौक के लोगों की तरफ़ इशारा करते हुए, ज़ूनी ने पूछा।

"इनमें से ज्यादा लोग लारी से पाकिस्तान चले जायेंगे," अब्बा ने कहा, "वे लोग ट्रक के आने की बाट जोह रहे हैं।"

अम्मा अचानक अपनी जगह से थोड़ी-सी खिसकी और पूछने लगी, "हम क्यों नहीं जा सकते ? हम उनकी तरह कोशिश क्यों नहीं कर सकते ? शायद वहाँ यहाँ से अच्छा हो।"

"वहाँ, यहाँ से अच्छा कैसे हो सकता है ?" अब्बा ने कुछ ग़ुस्से में कहा, "जब हमारी ज़मीन वहाँ नहीं, यहाँ है। दूसरे देश में ख़ाली हाथ जाने से क्या फ़ायदा ? हम वहाँ खायेंगे क्या ? हम वहाँ रहेंगे कैसे ?"

"लेकिन हो सकता है कि यहाँ भी कुछ बाक़ी न बचा हो ?" अम्मा रोने लगी, "हो सकता है, सब कुछ जल चुका हो।"

"गोपाल ने घर और ढोरों की देखभाल करने का वायदा किया था," अब्बा ने कहा, "खुदा ने चाहा, तो वह उन्हें बचाने में क़ामयाब हो सकेगा।"

अम्मा कुछ देर के लिये चुप हो गयी। एक बार फिर उन्होंने कुछ कहने की कोशिश की, "वहाँ अली होगा" उन्होंने धीरे-से कहा, "और रज़िया अली से शादी कर सकेगी।"

अब्बा मुड़े और रज़िया की तरफ़ देखने लगे। वह भूसे के ढेर पर, कमरे के सबसे अँधेरे कोने में घुटनों में मुँह छिपाये बैठी थी।

"रज़िया !" उन्होंने पुकारा, लेकिन उसने कोई जवाब नहीं दिया। वे उसके पास गये और धीरे-से उसका गाल छुआ। "रज़िया रुक जायेगी", वे बोले, "हमें अली की ख़बर जल्द ही मिलेगी।"

रज़िया ने अपनी आँखें नीची कर लीं। उसकी पलकों की परछाईं उसके पीले गालों पर काले पतंगे की तरह लग रही थी। उसके होंठ फड़फड़ाये पर वह रोयी नहीं। इस हालत में उसे देखकर अम्मा अचानक धीरे-से बोली, "यह देखो।" वह धीरे-से सिलाई मशीन के पास गयी और उसका ढक्कन उठाया। उन्होंने उसमें से कोई चीज़ बाहर निकाली जो चमक रही थी। ज़ूनी कूदकर, पास जाकर देखने लगी। वह आमियों के नमूने का बना चाँदी का हार था। अम्मा, उसे हाथ में लेकर हिलाकर हँसने लगी। अब वह और भी ज़्यादा चमक रहा था। रज़िया ने भी मुँह उठाकर देखा।

"मैंने तुमसे कोई भी कीमती चीज़ लाने के लिये मना किया था। अगर कहीं हमारे ऊपर रास्ते में हमला हो जाता तो ?" अब्बा ने ऊँची आवाज़ में कहा, "इतनी थोड़ी-सी चाँदी के लिये भी वे लोग हमारी जान ले सकते थे।"



लेकिन अम्मा मुस्करायी और कहने लगीं, "यह हार रज़िया अपनी शादी में पहनेगी। मैं इसे छोड़कर कैसे आ सकती थी ?"

अब्बा ने ऐसे सिर हिलाया मानो वे समझ गये हों। लेकिन इतना ही कहा, "क्या आज हम खाना नहीं खायेंगे ? क्या तुमने कुछ खाना बना लिया है ?"

अम्मा ने जल्दी से हार को वहीं छिपा दिया, जहाँ वह पहले रखा हुआ था। वह दाल की पतीली में कलछी चलाने लगीं। लेकिन जब उन्होंने खाना परोसा तो अब्बा ने बहुत कम खाया। शायद उन्हें भूख नहीं थी। जल्दी से खाकर वे दरवाज़े के पास बैठ गये और बाहर देखते रहे। वे किसी गहरे ख़याल में डूब गये।

मस्जिद के चौक में जो शरणार्थी थे, वे अब बहुत परेशान हो रहे थे। उनके पास बहुत ही कम खाना रह गया था। बाहर जाकर वे कुछ खरीदकर ला भी नहीं सकते थे। उनके लिये बाहर खतरा था। आख़िर एक दिन कुछ ट्रक आये और उन्हें पाकिस्तान ले चले।

एक रात, सिपाहियों द्वारा फाटक खटखटाने की आवाज़ सुनकर जूनी की आँख खुल गयी। वे बूढ़े चौकीदार को फाटक खोलने के लिये कह रहे थे। सब लोग, चाकू डंडे वगैरह लेकर दरवाज़े के पास जमा हो गये। उन्हें यह पक्का नहीं मालूम था कि वे सिपाही ही हैं। हो सकता था कि वे हत्यारे हों। तब वे उनका सामना कर सकते थे। पर जब चौकीदार ने थोड़ा-सा दरवाज़ा खोलकर झाँका तो उन लोगों ने खाकी वर्दी में सिपाहियों को देखा। सब सिपाही पसीने से तर थे। उनमें से एक के हाथ में बड़ी-सी टॉर्च थी और दूसरे के हाथ में एक काग़ज़ था।

अब्बा और जूनी नींद में ही यह सब देखने के लिये बाहर निकल आये।

"आप सब लोग तैयार हैं ?" अफ़सर ने चिल्लाकर पूछा, "जब मैं आपके नाम पुकारूँ तो आप लोग एक के बाद एक बाहर निकलकर एक क़तार में खड़े हो जायें। बड़े-बड़े बक्से ले जाने का हुक्म नहीं है, सिर्फ छोटे-छोटे बंडल जो आप लोग खुद उठा सकते हों, साथ ले चलिये। हमारे पास जगह बहुत कम है।"

चौक में हलचल मच गयी। ऐसा लगता था मानों रात नहीं, दिन हो। उस समय धूल की चादर से तारे ढके हुए थे और बहुत ही अँधेरा था। ताज्जुब की बात तो यह थी कि इसी अँधेरे में माँ-बाप अपने बच्चों को ढूँढ़ पा रहे थे, और बच्चे भी अपनी माँओं को आसानी से ढूँढ़ पा रहे थे और लोगों को अपना सामान जुटाने में भी कोई दिक़्क़त नहीं हो रही थी। थोड़ी ही देर में सब एक क़तार में खड़े हो गये। उनके दोनों तरफ़ सिपाही थे, जो उन्हें मस्जिद से बाहर खड़े हुए पाकिस्तान जाने वाले ट्रकों तक ले जाने को तैयार खड़े थे।

उन लोगों में से कुछ ने पीछे मुड़कर अब्बा को पुकारकर कहा, "सलाम आलेकुम हबीब मियाँ," और अब्बा ने भारी आवाज़ में जवाब दिया, "वालेकुम अस्सलाम !" फिर वे सब चले

गये। तब चौकीदार ने बड़ा दरवाज़ा बन्द करके चिटख़नी लगा दी। सिर्फ़ अब्बा और ज़ूनी ही चौक में खड़े रह गये। चौक क़ब्रिस्तान की तरह एकदम सूना और उजाड़ लगने लगा। ज़ूनी को लगा कि मस्जिद का सफ़ेद गुम्बज़ पेड़ों और दीवारों के ऊपर सिर उठाये खड़ा है। तभी, अचानक किसी के चीख़ने की आवाज़ सुनायी दी और ज़ूनी अब्बा से लिपटती हुई चिल्लायी, "वह क्या है ?"

चौकीदार ने, हाथ में चाबी का गुच्छा घुमाते हुए एक ओर जाते हुए कहा, "मोर है मोर, डरने की कोई बात नहीं है।" चौक के कोने में एक कमरे की ओर इशारा करते हुए उसने ज़ोर से कहा, "कल मैं तुम्हें तुम्हारा नया घर दिखाऊँगा।"

अब्बा ने ज़ूनी को अपनी गोद में उठा लिया और बोले, "कल सुबह तैयार होकर हम तुम्हारी राह देखेंगे।" यह कहते हुए उन्होंने ज़ूनी को इतनी ज़ोर से चिपटा लिया कि उनकी दाढ़ी उसे चुभने लगी। उन्होंने ज़ूनी से कहा, "अब सो जाओ, मैं तुम्हें अपनी गोद में लिये रहूँगा ताकि तुम आज की रात आराम से बाहर सो सको। यहाँ ठण्डक है।"

यह कह कर वह दरवाज़े के पास ही चुपचाप बैठ गये। ऐसा लग रहा था कि जैसे वे धूल-भरी सड़कों पर से पाकिस्तान की ओर जाते हुए ट्रकों की आवाज़ सुनने की कोशिश कर रहे हों। किन्तु वे केवल बरगद के पेड़ के पत्तों के बीच से आती सरसराती हवा की आवाज़ ही सुन पा रहे थे। कभी-कभी मोरों की दुखभरी पुकार भी उनके कानों में आ जाती।

अगले दिन जब बूढ़ा चौकीदार सुबह उन्हें बुलाने आया तो अब्बा ने सिलाई की भारी मशीन उठा ली, रज़िया के हाथ में बर्तनों की टोकरी थी, और अम्मा ने ज़ूनी का हाथ पकड़ लिया। वे शरणार्थियों के छोड़े गये कूड़े-करकट को लाँघते हुए, पक्के चौक को पार करके आगे निकल गये। उनके साथ एक दुबला-पतला कुत्ता भी हो लिया। जब वे सब टाइलों को पार कर खटखट करते जा रहे थे तो तोतों का एक झुण्ड बरगद के पेड़ों के ऊपर से नीले आकाश की तरफ़ उड़ गया। वह तोतों का झुण्ड धान के हरे पौधों की तरह लहलहाता हुआ, छोटी-छोटी कोमल अमियों की तरह या रत्नों की तरह चमकता लग रहा था। उन्हें देखकर ज़ूनी इतनी खुश हो गयी कि अम्मा का हाथ छोड़कर आगे-आगे भागकर अब्बा के पास चली गयी।

वे सब आगे जाकर एक कुएँ के पास रुके। सारे शरणार्थी यहीं से पानी पीते थे। वह कुआँ एक किले की तरह बहुत गहरा था। उसकी दीवारें नीचे तक अँधेरी थीं। अगर आप हिम्मतवाले हों तभी मुँडेर पर बैठ कर नीचे की ओर झाँक सकते थे। नीचे हरे रंग के ठंडे पानी में मेढकों के तैरने और छपछपाने की आवाज़ सुनायी दे रही थी।

उसी दीवार के पास एक छोटा-सा लकड़ी का दरवाज़ा था। भीड़ की वज़ह से उसकी ओर ज़ूनी का ध्यान पहले नहीं गया था। अब चौकीदार ने उसे खोल दिया था। ज़ूनी सबसे पहले दौड़कर उसके अन्दर चली गयी। यहाँ एक चौक था, किन्तु वह पहले चौक की तरह पक्का नहीं था, न ही

उसके चारों ओर कमरे बने हुए थे। यह एक बहुत बड़ा बाग़ था, जो छोटे-छोटे हिस्सों में बँटा हुआ था। यहाँ नीबू, संतरे और आम के पेड़ थे। फूलों से भरी बेलें चारों तरफ़ फैल रही थीं। बीच-बीच में तरकारियों की क्यारियाँ बनी हुई थीं। यह चौक चारों तरफ़ से नीची, सलेटी पत्थरों की दीवार से घिरा हुआ था। धूल भरी पत्तियों के ऊपर से, सलेटी रंग के पत्थर का बना गोल गुम्बद दिखायी दे रहा था।

तभी बैंगन के पौधों और तोरई की बेलों के बीच से एक भूरी मुर्गी अपने चूज़ों के साथ सरसराती हुई निकल गयी। ज़ूनी खुशी के मारे उनके पीछे दौड़ी और चिल्लाने लगी, "मुर्ग़ियाँ—अम्मा देखो—मुर्ग़ियाँ।"

वहाँ कबूतर भी थे। टपकते हुए नल के पास वाले आमों के पत्तों में से ज़ूनी को उनकी गुटुर गूँ-गुटुर गूँ की आवाज़ सुनायी पड़ी। यह जगह पक्के टाइलों वाले चौक से कहीं ज्यादा छायादार और ठण्डी थी।

"चलो, जल्दी चलो!" अब्बा ने पुकारा, "इस तरह हमें चौकीदार का वक़्त ख़राब नहीं करना चाहिये।"

लेकिन वे लोग पहले ही वहाँ पहुँच गये थे। चौकीदार ने थोड़ा-सा झुककर चमेली की बेल को हटाया। वहीं पर लौकी की बेल भी फैल गयी थी। उसी बेल के पीछे, उन लोगों ने मिट्‌टी की, छप्परवाली एक छोटी-सी झोपड़ी देखी। अब उन्हें इसी में रहना था।

यह कच्ची झोपड़ी बहुत ही छोटी थी गाँव में बहुत ही ग़रीब लोग ऐसी झोपड़ियों में रहते थे। उनके अपने मकान की तरह तो वह बिल्कुल भी नहीं थी।

अम्मा, चमेली की बेलों के बीच खड़ी हुई हाथ में हाथ डाले सब नज़ारा देखने लगी। रज़िया उनके पास खड़ी थी। वह ऐसे देख रही थी जैसे अंदर जाना ही न चाहती हो।

लेकिन ज़ूनी नहीं मान सकती थी। चुपचाप खड़ी रहकर वह सबके पास से कूदती हुई झोंपड़ी के पास जाकर पूछने लगी, "क्या यह हमारा घर है अब्बा ? अरे देखो, यह कितना सुन्दर है—सब कुछ कितना खूबसूरत है। कितनी छोटी-सी खिड़की है। छत के ऊपर कबूतर हैं—शायद वहाँ उनका घोंसला है। अम्मा देखो दरवाज़े के पास ही मिर्च उग रही है। तुम इन्हें खाने में डाल सकती हो। रज़िया, देखो झाड़ियों के नीचे मुर्ग़ी अपनी चूज़ों के साथ दिखायी दे रही है। शायद वह यहीं रहती है।"

अब्बा उसकी चबड़-चबड़ सुनकर हँसने लगे। वह सिलाई की मशीन लिए छोटे दरवाज़े में झुककर अन्दर घुस गये। खिड़की से अपना मुँह बाहर निकालकर अब्बा बोले, अन्दर आओ, अन्दर आओ, बाहर खड़े तुम सब किसकी बाट देख रहे हो ?"

अब्बा की आवाज़ सुनकर ज़ूनी सबसे पहले अन्दर गयी और वहाँ की चिकनी मिट्‌टी से लिपी ज़मीन की सराहना करने लगी। बल्लियों पर रुकी छप्पर की छत तथा छोटी-सी झोंपड़ी की ठण्डक में उसे बहुत मज़ा आ रहा था।

ऐसा नहीं लगा कि अम्मा और रज़िया को अपना नया घर बहुत अच्छा लगा हो, किन्तु वे





बहुत देर तक बाहर धूप में रुकी नहीं रह सकती थीं, इसलिए अन्दर आ गयी। अम्मा काम में जुट गयी। उन्होंने बर्तन अलग-अलग करके रख लिए। छोटा-मोटा बिस्तर भी खोलकर ठीक से लगा दिया, जिससे वह जगह रहने लायक लगने लगे।

मिट्टी और ईंटों से बने चूल्हे में आग जलाते हुए अम्मा ने लम्बी साँस ली। वे बोलीं, "अच्छा, तो अब हमें सिर्फ़ शरणार्थियों की तरह ही रहना है।"

ज़ूनी ने पूछा, "अम्मा, क्या उस पौधे से मिर्च तोड़ लाऊँ?"

अब्बा मुस्कुराये। जब ज़ूनी उनके पास से होती हुई उधर गयी तो उसके गाल पर उन्होंने चुटकी काट ली। वे बोले, "रोटी के साथ अगर मुझे मिर्च मिल जाये, तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है? अगर तुम मुझे जल्दी से खाना दे दो, तो मैं बाहर जाकर देख सकता हूँ कि उन लोगों के पास मेरे लिए क्या काम है?"

इसलिये अम्मा को जल्दी करनी पड़ी। थोड़ी ही देर में वह छोटी-सी कोठरी, मिर्च और प्याज से बनी, टमाटर पड़ी दाल और रोटियों की खुशबू से भर गयी। पके टमाटर भी ज़ूनी को बाहर झाड़ी में मिल गये थे। "ऐसा लगता है कि अब ज़ूनी ही हमें खाना देगी", अब्बा ने दुबारा खाना लेते हुए कहा।

"आह! बाग़ खाने की तमाम चीज़ों से भरा पड़ा है।" ज़ूनी चहकती हुई बोली, "चारों तरफ़ देखने लायक़ चीज़ें हैं।"

बाग़ की छानबीन करने के लिए जब ज़ूनी बाद में बाहर गयी तो सबसे पहले उसकी निगाह चारों तरफ की सलेटी दीवार पर गयी। उसे घुटन लगने लगी और वह डर भी गयी। वह जानती थी कि बाहर हरा-भरा मैदान फैला है तथा दूर-दूर तक हरे-हरे खेत हैं। अगर उसका बस चलता, तो वह बाहर दौड़कर किसानों को खेतों में काम करते, इधर-उधर सामान से लदी बैलगाड़ियों को आते-जाते और आम के बगीचों में खेलते-कूदते बच्चों को देखने भाग जाती। लेकिन सारे दरवाज़े बन्द थे और चारों तरफ़ एकदम सन्नाटा था। यह सब चुलबुली और शरारती छोटी बच्ची ज़ूनी के लिए बहुत ही अखरनेवाला था।

ज़ूनी जब वहाँ खड़ी थी और सोच रही थी कि वह अकेले, अपने आप क्या खेले, तभी उसने देखा कि दीवार पर कोई चीज़ फड़फड़ा रही है। वह एक शाही मोर था। उसकी सुनहरी छाती नीले हरे रंग से चमचमा रही थी। ज़ूनी नींबू के पेड़ के पास चुपचाप खड़ी हो गयी और मोर की तरफ़ देखती रही। मोर दीवार पर तनकर, सीधा और चुपचाप बैठा था। उसकी सुन्दर गर्दन मेहराब की शक्ल में उठी हुई थी और उस पर सुनहरा ताज झिलमिला रहा था। मोर की लम्बी पूँछ दीवार के दूसरी ओर लटक रही थी। उसे देखकर लगता था मानों रत्नों की बौछार हो रही हो। ज़ूनी के देखते-ही-देखते एक और मोर उड़कर आया और आकर बैठ गया, उसके बाद एक और, और फिर, एक और लेकिन वे तीनों मोरनियाँ थीं। उनके भूरे पंख तो सुनहरे, नीले और हरे रंगों से चमक रहे

थे, किन्तु उनकी पूँछ लम्बी नहीं थी। ये मोरनियाँ उसी मोर की थीं। उनमें से एक ने खेत में कुछ देखा और चीख़ मारकर उड़ गयी। उसके पीछे-पीछे और सब भी उड़ गये। तेज़ ऊँची और दर्द भरी आवाज़ में "मेंआओ, मेंआओ" करते हुए वे सब चीख़ते चले गये।

ज़ूनी ने बाद में कुछ और हिम्मत की। वह नीबू के पेड़ों के बीच से और दीवार के बराबर उगी लौकी और तोरई की बेलों के बीच से होती हुई झाड़ियों में कुछ ढूँढ़ने लगी। हाथ-पैरों में कँटीले पौधों से लगी खरोंच की चिन्ता उसने नहीं की। वह झाड़ियों में तब तक घूमती रही, जब तक उसे मोर पंख नहीं मिल गया। यह मोर पंख गोल पंखे जैसा था। सुनहरे, हरे और नीले रंग के गोले-जैसा, वह पंख बीच में जवाहरात-जैसा चमक रहा था।

पंख को लेकर ज़ूनी दौड़कर घर में गयी और उसने वह पंख अपनी अम्मा को दिखलाया। उस समय अम्मा बाहर नल पर बरतन माँज रही थी।

"बहुत सुन्दर है।", अम्मा ने कहा।

"अम्मा ! बाग़ मोरों से भरा पड़ा है !", ज़ूनी ने बताया, "मैंने दीवार पर चार मोर देखे हैं—एक मोर तथा तीन मोरनियाँ।"

उसकी माँ ज़ूनी की ओर देखकर हल्के-से मुस्करायी और बोली, "तुमने तो इससे पहले भी कितनी बार, खेतों में मोर देखें हैं। हमारे खेतों के चारों तरफ़ कितने सारे मोर थे, जो अनाज खा जाते थे।"

"हाँ, पर ये तो यहाँ रहते हैं—बाग़ में, हमारे पास।" ज़ूनी ने माँ को समझाने की कोशिश की। अपने गाल पर पंख थपथपाती वह अन्दर भाग गयी। उसने वह पंख बल्ली और छप्पर के बीच में खोंस दिया। रज़िया उसी की ओर देख रही थी। ज़ूनी ने उससे कहा, "मैं मोर पंख इकट्ठे करूँगी और सारी छत इनसे भर दूँगी। फिर जब हम छत के नीचे लेटेंगे, तो लगेगा, जैसे हम तारों के नीचे लेटे हुए हैं।"

"तारे, मुझे तो ये तारे-जैसे नहीं लग रहे हैं," रज़िया हँसी।

"जड़े हुए तारे" ज़ूनी ने कहा और बाहर दौड़ गयी।

मोर-पंखों को ढूँढ़ने के चक्कर में ज़ूनी मस्जिद के चारों तरफ़ फैले बाग़ में घूम आयी। तब उसे पता चला कि दीवारों से घिरे बाग़ के अन्दर, दूसरी दीवारों से घिरा एक और बाग़ भी है। एक बाग़ में नींबू के पेड़ हैं तो दूसरा बाग़ लुकाट के पेड़ों से भरा है, वहाँ बेला और चमेली की बहुत-सी बेलें फैली हुई हैं। अब उसे न तो वहाँ घुटन लग रही थी और न ही वह जगह उसे वीरान लग रही थी।

नींबू के बाग़ के कोने में ज़ूनी को एक कुआँ दिखायी दिया। वहाँ ढोरों के लिए छप्पर पड़ा हुआ था। अब्बा वहीं बैलों को चारा-पानी दे रहे थे।

"ये लोग बैल क्यों रखते हैं, अब्बा ?" ज़ूनी ने एक बैल की झुर्रीदार गर्दन को हाथ से थपथपाते हुए पूछा। उस बैल की आँखें भूरी थीं और उसने ज़ूनी को सींग भी नहीं मारे। "यहाँ जोतने के लिए खेत भी तो नहीं हैं ?" उसने पूछा।

"इन लोगों के खेत बाहर हैं, ज़ूनी", उन्होंने चारे की बाल्टी लाते हुए कहा। "बाहर जाकर ही ये लोग उनकी देख-भाल करते हैं, पर हम लोग बाहर फ़सल देखने नहीं जा सकते।"

"क्यों अब्बा ?" ज़ूनी कुएँ की मुँडेर पर बैठकर पैर हिलाते हुए बोली। वह बाल्टियों में भरे चारे को खाते हुए बैलों को देख रही थी।

"आजकल वक़्त बहुत ख़राब है। लोग पागल हो गये हैं। वे एक-दूसरे को मार रहे हैं। शहर और गाँवों में एक दूसरे के घर जला रहे हैं। जब तक सब ठीक न हो जाये, वहाँ जाना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। यहाँ मस्जिद की चारदीवारी के अन्दर हम सुरक्षित हैं।"

"हाँ, हाँ, मुझे यह सब पता है," ज़ूनी उन्हें यक़ीन दिलाते हुए बोली। वह नहीं चाहती थी कि अब्बा यह समझें कि वह ज़रा-सा भी डर रही है।

"ज़ूनी मेरी बेटी ! क्या अपनी सहेलियों के बिना, तुम्हारा मन यहाँ नहीं लग रहा है ? तुम्हारे साथ कोई खेलनेवाला भी तो नहीं है ?" उसने पूछा।

"नहीं अब्बा", ज़ूनी ने उत्तर दिया, "मुझे यह बाग़ बहुत अच्छा लगता है।"

"यह तो बहुत अच्छी बात है," अब्बा ने कहा, "सूरज छिपनेवाला है, इसलिये मुझे चलकर नमाज़ पढ़नी चाहिये।"

"क्या मैं भी आपके साथ चल सकती हूँ ?" दीवार से नीचे कूदते हुए ज़ूनी ने पूछा।

"चलो," उन्होंने कहा।

हाथ में हाथ डाले हुए नींबू के बाग़ से होते हुए और बेलों से छायी हुई अपनी छोटी झोंपड़ी के पास से निकलते हुए वे दोनों दरवाज़ों से उस चौक में आ गये जहाँ शुरू में, उन लोगों ने कुछ दिन बिताये थे। बूढ़ा चौकीदार नमाज़ की काली टोपी पहने मस्जिद की ओर जल्दी-जल्दी जा रहा था। ज़ूनी ने देखा, पुराने बरगद के खोखले तने से तोते अपना सिर निकाल कर एक-दूसरे के ऊपर चहचहा रहे थे।

वे दोनों उस तंग रास्ते से होकर आगे बढ़े, जो बेलों और सफ़ेद फूलों से ढका था। फिर वे दोनों संगमरमर की सीढ़ी से होकर मस्जिद में चले गये। अब्बा ने सिर की टोपी सीधी की और ज़ूनी ने अपना दुपट्टा ठीक से ओढ़ लिया।

अब्बा ज़ूनी का हाथ पकड़कर उसे दूध की तरह सफ़ेद और बर्फ की तरह ठण्डी ज़मीन पर से चलते हुए एक कमरे में ले गये, जहाँ पर सूफ़ियों और उनके लड़कों के मकबरे बने हुए थे। वे सभी मकबरे रेशम तथा साटन से ढके हुए थे। वहाँ अपने चारों तरफ़ तरह-तरह के रंग देख ज़ूनी की आँखें चौंधिया गयीं। हरे, लाल और जामुनी रंगों से रँगी छत से झाड़-फ़ानूस लटक रहे थे। फ़र्श पर, पके आलू-बुखारों और गुलाबों की तरह के गहरे रंग के क़ालीन बिछे हुए थे। दीवार पर मोर पंखों से बने ऐसे पंखे लटक रहे थे, जिन पर सुनहरी तथा रूपहली चमकती झालरें लटक रहीं थीं। ज़ूनी ने पिछली ईद की नमाज़ के दिन जिन मौलवी साहब को देखा था, वही लम्बी दाढ़ीवाले

मौलवी साहब आज भी वहाँ बैठे थे। वे मौलवी साहब गुलाब और गेंदे की पंखुड़ियों तथा पत्तियों को ज़मीन पर बिछा रहे थे। वे इतने मशगूल थे कि उन्हें मुँह उठाकर ऊपर देखने की फ़ुरसत तक नहीं थी। ज़ूनी को ये मौलवी साहब बड़े रोबीले और डरावने लग रहे थे।

वहाँ दरवाज़े के पास खड़े-खड़े उसे लगा कि जैसे वह बहुत छोटी है तथा धूल से सनी हुई है। अचानक उसे अपने नंगे पैरों में धूल चुभती हुई-सी लगी। उसने देखा, उसके दुपट्टे में सिर पर एक बड़ा छेद है। तब उसे इतनी शर्म लगने लगी कि उस शानदार कमरे में एक मिनट रुक पाना भी उसे मुश्किल लगने लगा।

अब्बा मक़बरे के पास झुके हुए नमाज़ पढ़ रहे थे। ज़ूनी चुपचाप वहाँ से बाहर निकल आयी। बाहर आकर, खुले हुए बरामदे और ऊँचे मेहराबों के नीचे खड़ी होकर उसने अपने आपको फिर से खुश और आज़ाद महसूस किया। वहाँ के मेहराब तस्वीर के फ्रेम की तरह लग रहे थे, जिनमें से वह मस्जिद का बाग़ और चौक देख सकती थी। यहाँ तक कि नीची दीवारों के ऊपर से दूर तक फैले हुए खेत भी उसे दिखलायी पड़ रहे थे।

ज़ूनी, मेहराब के एक संगमरमर के खम्भे से लिपट गयी और बाहर देखने लगी। वह लगातार बाहर की ओर घूर रही थी। उसने बहुत दिनों से बाहर की दुनिया नहीं देखी थी। वह सोचने लगी, काश, कहीं से उसे अपना गाँव दिखायी दे जाता और यह पता लग पाता कि उसका घर अभी तक सही-सलामत है या जल कर राख हो गया है। लेकिन वह ऐसा कुछ भी न देख सकी। उस समय सिक्खों के गुरद्वारे के सुनहरे शिखर शाम के सूरज की रोशनी में चमक रहे थे। बाहर ज़ूनी को वे लहलहाते हरे खेत तथा आमों के घने बाग़ दिखायी दिये, जहाँ वह पहले खेला करती थी। उसने देखा, सूरज एक बड़े आग के गोले की तरह लाल आसमान में डूब रहा है। तभी मस्जिद के ठीक पीछे, लुकाट के पेड़ के ऊपर से एक मोर फड़फड़ाता हुआ आया और झाड़ियों में ग़ायब हो गया।

"ज़ूनी", अब्बा ने आवाज़ दी तो ज़ूनी वह उनके पास दौड़ आयी।

"क्या हम घर चल रहे हैं ?" ज़ूनी ने पूछा। उसे भूख लग रही थी।

"नहीं, अभी तक मैंने अपनी नमाज़ नहीं पढ़ी है," उन्होंने कहा, "मैं तो ऊपर उन सूफ़ियों को अभिवादन करने गया था जिनकी याद में यह मस्जिद बनी है। आख़िर, वही हमें बचा रहे हैं—है न ?"

वे सीढ़ियों से उतरकर, संगमरमर के गुम्बद और खम्बोंवाले नमाज़ पढ़ने के बड़े कमरे में चले गये। उस बड़े कमरे की छत पर फलों की तरह की नक़्क़ाशी की हुई थी। वहाँ लम्बा मौलवी, पहले ही घुटनों पर झुका हुआ नमाज़ पढ़ रहा था। अब्बा भी उसका साथ देते हुए नमाज़ पढ़ने लगे। बूढ़ा चौकीदार वहीं कोने में बैठा अकेले ही कुछ बड़बड़ा रहा था।

ज़ूनी बाहर ही रुक कर इधर-उधर घूमने लगी। तभी उसे एक नया मैदान दिखायी दिया। यह एक क़ब्रिस्तान था, जहाँ सलेटी रंग के क़ब्र और मक़बरे थे। उन्हीं के बीच एक राजसी मोर

घूम रहा था। कभी-कभी तो वह ज़मीन में से कुछ चुग लेता था और कभी गरदन उठा कर ज़ूनी की ओर देख लेता। ज़ूनी उस मोर को तब तक देखती रही, जब तक कि वह लुकाट के बाग़ में ग़ायब नहीं हो गया।

वहाँ, ज़ूनी ने एक छेद में से जब नीचे की ओर झाँका तो उसे एक तहख़ाना दिखलायी पड़ा। उसी समय अब्बा के बाहर आने पर वह उन्हें वहाँ मिल गयी। अब्बा ने उसे बतलाया कि यह वह तहख़ाना है, जिसमें बन्द होकर जियारत करनेवाले अपने गुनाहों की माफ़ी के लिये इबादत करते हैं और माफ़ी माँगते हैं। वे लोग यहाँ कई-कई दिन बिना पानी और खाने के रह जाते हैं—अँधेरे में—केवल पूजा करते हुए।

ज़ूनी काँप उठी और अब्बा का हाथ थामकर बोली, "मैं यह सब नहीं करूँगी। मुझे अँधेरे कमरे बहुत बुरे लगते हैं।"

"तुम पापी थोड़े न हो जो..." अब्बा हँसते हुए बोले, "अच्छा अब चलो घर चलें और देखें कि घर में अम्मा को रोशनी के लिये दीया भी मिला है या नहीं।"

ज़ूनी ने कुछ ही दिनों में ढेर सारे मोर पंख जमा कर लिये और उसकी झोपड़ी के छप्पर की छत उनके रंगों से चमचमाने लगी। ऐसा लगता था जैसे छत पर तारों की छाप वाला क़ीमती कपड़ा लटक रहा हो। झोपड़ी में ठण्डी ज़मीन पर लेटकर उनकी सुन्दरता को देखना ज़ूनी को बहुत अच्छा लगता था। अब उसे सूखे भूसे के बीच से सरसर करती हवा भी सुहावनी लगने लगी थी। और सख़्त गर्मी की दोपहर भी ठण्डी और आरामदेह लगती थी। वे सब रात के वक़्त तो झोंपड़ी से बाहर असली तारों के नीचे सोते थे। और तब अक्सर पास से ही मोरों की आवाज़ें भी उन्हें सुनायी दे जाती थीं। मोरों की आवाज़ में एक दर्द-सा महसूस करते हुए भी ज़ूनी को अब अच्छा लगता था। उसे अब पहले की तरह बुरा नहीं लगता था। अब तो वह मोरों को अच्छी तरह जानने लगी थी।

ज़ूनी को नींबू के पेड़ों के नीचे से मोर पंख जमा करना बहुत अच्छा लगता था। कुछ दिनों बाद जब सन्तरे पकने लगे तो उन्हें देखकर वह बहुत खुश हुई किन्तु कभी-कभी उसे लगता था काश ! उसके साथ खेलने के लिये कोई सहेली भी होती। उसे ख़याल आया, अमीना को इन क़ब्रों के पत्थरों के बीच घर-घर खेलना कितना अच्छा लगता था ? ज़ोहरा और वह मिलकर बाग़ के कबूतरों तथा मोरों को दाना खिला सकती थी या अगर कभी-कभी चुपचाप बैठकर बात करने के लिये उसकी गुड़िया मुमताज ही उसके पास होती। उसे स्कूल की भी याद आ गयी। पहले उसे स्कूल जाकर चुपचाप सवाल हल करना बहुत बुरा लगता था, पर अब उसे लग रहा था कि इन दीवारों के अन्दर इस तरह अकेले चुपचाप रहने से तो स्कूल जाना ही अच्छा है।"

पहले रज़िया ज़ूनी के साथ कई तरह के खेल खेला करती थी। उसे गुट्टियों को हवा में उछाल कर उल्टे हाथ पर लेना बहुत अच्छा लगता था। वे दोनों ज़मीन पर तरह-तरह की गोल-चौकोर



लाइनें खींचकर खेला करती थीं। कभी-कभी वे अपने मन से छोटी-छोटी कविताएँ बनाकर गाया भी करती थीं।

लेकिन अब रज़िया चुपचाप रहने लगी थी। वह बुझी बुझी-सी लगती थी और पीली पड़ गयी थी। इसीलिये, ज़ूनी को अब उससे डर लगने लगा था। वह उससे दूर रहने लगी थी, जबकि उसे मालूम था कि उसी की तरह रज़िया भी अकेली थी।

अम्मा ने लम्बी साँस लेकर रज़िया से कहा, "काश ! मेरे पास थोड़ा भी कपड़ा होता तो मैं तुम्हें सिलाई मशीन चलाना सिखा देती। इससे समय आसानी से कट जाता।" लेकिन बाज़ार जाकर कोई कपड़ा ख़रीदकर नहीं ला सकता था। कोई दयालु आदमी आकर उनके दरवाज़े पर ही तेल और अनाज दे जाया करता था, जिसका चेहरा भी उन लोगों ने कभी नहीं देखा था। सब्ज़ियाँ वे बाग़ में उगा लेते थे। कभी-कभी भूरी मुर्ग़ी उनके लिये अण्डा भी दे देती थी।

एक दिन जब ज़ूनी चौक के गहरे कुएँ पर पानी पीने के लिये दौड़ी-दौड़ी जा रही थी, तभी पास के कमरे में से किसी ने उसे आवाज़ दी। वह रुक गयी और कुछ क़दम पीछे लौटी तो उसे सफ़ेद बुर्के में लिपटा एक चेहरा दिखायी दिया। वह बुढ़िया उसकी ओर देख रही थी।

"बेटी, यहाँ आओ," बुढ़िया ने बड़ी कमज़ोर आवाज़ में कहा, "मैं तुम्हें हमेशा चारों तरफ़ खेलते देखती रहती हूँ, लेकिन तुम मेरे पास कभी नहीं आती।"

ज़ूनी धीरे-धीरे उसके पास गयी। बुढ़िया चारपाई पर बैठी थी और बीमार लग रही थी।

"मैं बीमार हूँ", उसने कहा, "तुम्हारी माँ से मिलने के लिये बाहर नहीं जा सकती। तुम अपनी माँ को मेरे पास भेज देना—भेजोगी न ?"

ज़ूनी ने धीरे-से सिर हिला दिया और अम्मा से कहने के लिये वापस घर दौड़ गयी। लगता था कि अम्मा उस बुढ़िया को जानती थी।

"वह बूढ़े चौकीदार की बीवी है", उन्होंने बताया। "हाँ, हमें उनसे मिलने जाना चाहिये। चलो, रज़िया, आओ ज़ूनी, चलो बुढ़िया के पास चलें। यहाँ बैठे अकेले बड़बड़ाते रहने से क्या फ़ायदा ?"

जब वे सब मिलने के लिये आयीं तो चौकीदार की बीवी को बहुत अच्छा लगा। उसने उन लोगों को पीने के लिये शरबत दिया। पानी ठण्डा नहीं था, लेकिन उसमें शक्कर और गुलाब जल मिला था। यहाँ आने के बाद, पहली बार ज़ूनी को कोई मीठी चीज़ मिली थी। वह कोने में बैठकर धीरे-धीरे शरबत पीने लगी। रज़िया और अम्मा बुढ़िया से बातें करने लगीं।

उस दिन के बाद, ज़ूनी फिर कभी बुढ़िया से मिलने नहीं गयी। उसे लगा कहीं बुढ़िया उसे लालची न समझ बैठे। रज़िया और अम्मा वहाँ अक्सर जाया करती थीं। वे अपने साथ सुई-धागा

और थोड़ा-सा पुराना कपड़ा भी ले जाती थीं। बान की चारपाई पर बैठकर सब मिलकर क़सीदे काढ़ती थीं। वह बुढ़िया लखनऊ की थी जहाँ मलमल पर चिकन की मशहूर कढ़ाई होती है। रज़िया को कढ़ाई सीखने का शौक़ था। उसने जल्दी ही बड़े चाव से चिकन की कढ़ाई सीख ली।

"अच्छा तो अब तुम्हारी शादी के लिये हमारे पास बहुत सुन्दर सामान जमा हो जायेगा।" अम्मा ने खुशी से कहा।

अब रातें अधिक ठंडी होने लगी थीं, इसलिये वे सब झोपड़ी के अन्दर मोर के पंखों से बने चंदोवे के नीचे ज़मीन पर सोने लगे थे। सूरज देर से निकलता था। मक़बरों और पेड़ों पर कोहरा छाया रहता था। पेड़ों पर सन्तरे पकने लगे थे। अब जाड़े के दिन आ गये थे।

एक दिन ज़ूनी कुएँ की मुँडेर पर ठोड़ी पर हाथ रखे बैठी-बैठी कुछ सोच रही थी कि वह क्या करे ? तभी उधर से अब्बा निकले और ज़ूनी को पुकारा, "आओ बेटी ज़ूनी, सन्तरे तोड़ने में मेरी मदद करो। अगर अम्मा को रज़िया की ज़रूरत न हो तो उसे भी बुला लाओ।"

ज़ूनी नीचे कूदी और दौड़ पड़ी। कुछ काम मिल जाने की वजह से वह बहुत खुश थी। रज़िया भी तरकारी काटना छोड़कर ज़ूनी के साथ बड़े चाव से दौड़ी चली आयी।

अब्बा पहले ही पेड़ों के नीचे पके सन्तरे तोड़-तोड़कर टोकरी में भर रहे थे। वे दोनों को देखकर मुस्कराये, "दो लड़कियाँ मेरी मदद करेंगी तो काम ख़त्म करने मे कुछ भी वक़्त नहीं लगेगा।" उन्होंने कहा, और दोनों को एक-एक टोकरी पकड़ा दी।

जैसा ज़ूनी ने सोचा था, वह काम उतना आसान नहीं था। पेड़ बहुत बड़े और ऊँचे नहीं थे, फिर भी ज़ूनी सन्तरों तक आसानी से नहीं पहुँच पा रही थी और डाली खींच-खींच कर उसे पके सन्तरे तोड़ने पड़ रहे थे। कभी-कभी नुकीली टहनियों के काँटों से उसे खरोंच लग जाती थी। पत्तों की धूल भी झड़कर उन पर गिर जाती थी। ऐसी हालत में भी वे दोनों बहनें सारी सुबह काम करती रहीं।

दोपहर के समय अम्मा सिर पर खाने की टोकरी तथा हाथ में पानी का लोटा लेकर बाग़ में आयी। उन्होंने फूलों से भरी बिगनोनियां की बेल के नीचे सबका खाना लगा दिया। यह बेल जाड़ों भर नारंगी का तम्बू-सा बना कर चारों तरफ़ फैलकर फूल उठती थी। उन्होंने दोनों लड़कियों और उनके अब्बा को बुलाया। जाड़े की धूप में सब उसी खिली बेल के नीचे बैठ गये और अम्मा की बनायी आलू की तरकारी तथा मूली के परांठे खाने लगे।

"यह तो बहुत ज़ायकेदार है अम्मा।" ज़ूनी ने खाते हुए कहा, उसे बहुत भूख लग रही थी। उसने पूछा, "क्या मुझे और मिल सकता है ?"

अम्मा ने उसे थोड़ा और परोस दिया। रज़िया ने भी और माँगा। "अगर मुझे मालूम होता कि तुम लोग बाहर बैठकर इतने मज़े से खाओगे, तो मैं तुम्हें हमेशा बाहर बैठाकर ही खाना खिलाती", अम्मा ने कहा।



"शायद तुम्हें यही करना चाहिये," अब्बा ने घड़े में से पानी निकालते हुए कहा।

खाना खाकर वे सब फिर सन्तरे तोड़ने के लिये चले गये। शाम तक रसीले सन्तरों से तीन टोकरियाँ भर गयी थीं। उन तीनों की उँगुलियों में से बहुत अच्छी खुशबू आ रही थी।

"इन सन्तरों का हम क्या करेंगे अब्बा ?" ज़ूनी ने पूछा।

"हम कल इन्हें गाँव ले जायेंगे और बाजार में बेच देंगे," उन्होंने इतने धीरे-से कहा कि एक मिनट तक तो ज़ूनी समझी ही नहीं कि उनका मतलब क्या है ?

जब उसकी समझ में आया तो वह खुशी के मारे एकदम उछल पड़ी, फिर एकाएक चुप होकर हकलाते हुए उसने धीरे-से पूछा, "लेकिन अब्बा ! हम गाँव कैसे जा सकते हैं ?"

"मैं सोचता हूँ कि अब गाँव में ख़तरा नहीं है", अब्बा ने कहा, "जो आदमी मेरे लिये गेहूँ और तेल लेकर आता है, उसने बताया है कि अब चारों ओर सुकून और ख़ामोशी है। कहीं कोई गड़बड़ी नहीं है। मैंने मौलवी साहब से भी बात कर ली है। वे भी सोचते हैं कि मुझे वापस गाँव जाने की कोशिश करनी चाहिये। एक दिन हमें बाहर जाना ही है और बाहर जाकर पता करना है इसलिये क्यों न अभी से शुरू कर दें।"

"अब्बा, क्या मैं आप के साथ चल सकती हूँ ?" ज़ूनी ने डरते-डरते पूछा।

ज़ूनी के अब्बा ने उसके मासूम चेहरे पर चमकती आँखों को देखा और बोले "हाँ, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा।"

"ओह, अब्बा, कब ? कितने बजे ?"

"अभी नहीं, कल सुबह। चलो घर चलें। मैं हुक्का पीना चाहता हूँ।" उन्होंने कहा।

ज़ूनी अब्बा के आगे-आगे पेड़ों के बीच से अपनी झोंपड़ी तक नाचती ही गयी। रज़िया ने अब्बा के लिये हुक्का पहले से ही तैयार कर रखा था। अब वे आराम से बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगे। नाचती-गाती ज़ूनी झोंपड़ी के अन्दर पहुँचकर अम्मा से बोली, "अम्मा, कल हम बाहर जा रहे हैं। बाहर गाँव में। अब्बा कह रहे हैं।"

अम्मा गरारे से हाथ पोछतीं बाहर आयीं। "क्या यह सच है ?" उन्होंने हाँफते हुए पूछा, "यह सच कैसे हो सकता है ? क्या यह ख़तरे से बाहर ... ?"

"मैंने सुना है कि अब कोई ख़तरा नहीं है," अब्बा ने कहा, "मुझे उन लोगों पर यक़ीन है, क्योंकि वे हमेशा ही मेरा ख्याल रखते हैं। कल, मैं और ज़ूनी संतरे बाज़ार ले जायेंगे। अगर बाज़ार से तुम्हें कुछ चाहिये तो मुझे बता दो, मैं तुम्हारे लिये ख़रीद लाऊँगा।"

अम्मा को बहुत-सी चीज़ें चाहिये थीं, इसलिये बिना बहस किये वे अब्बा को बताने लगीं कि उन्हें क्या-क्या चाहिये। सबसे ज़्यादा तो उन्हें बाहर की ख़बरें जानने की इच्छा थी। अपने घर की ख़बर, अपने ढोरों की ख़बर, आम के बाग़ की ख़बर, गोपाल और पड़ोसियों की ख़बर और

सारे गाँव की ख़बर। "मैं सबके बारे में जानना चाहती हूँ," उन्होंने कहा। अब्बा ने वायदा किया कि वे सबका पता लगायेंगे।

अगले दिन सुबह अब्बा, ज़ूनी और बूढ़े चौकीदार की मदद करनेवाले छोटे लड़के को लेकर जब नीले रंग के फाटक से बाहर सड़क पर पहुँचे, तब मोरों के बाग़ की दीवारों पर और पेड़ों पर सफेद; ठण्डा कोहरा छाया हुआ था। वे बाहर निकलकर कुछ देर के लिये ठिठक गये। उन्हें सलेटी रंग की दीवारों से बाहर निकलकर आना बहुत अजीब लग रहा था। इन दीवारों ने इतने दिन तक उन लोगों को बचाया था। सड़क उन्हें साफ़-सुथरी खुली हुई और बहुत ही चौड़ी लग रही थी। वहाँ से कुछ ही दूरी पर सुबह के सूरज की रोशनी में चमकते हुए सिक्खों के गुरुद्वारे के गुम्बद दिखायी दे रहे थे। तभी सड़क पर धूल उड़ाती, धड़धड़ाती हुई पों-पों करती हुई एक बस आयी। बस को देखकर बहुत से दूधवाले अपने बर्तन खड़खड़ाते हुए सड़क पर आ गये। वे सभी बस पर सवार हो गये और बस उन्हें लेकर शहर की ओर चली गयी।

"चलो, अब चलें", अब्बा ने कहा और वे धीरे-से सिर पर संतरों की टोकरी सँभालते हुए आगे चल दिये।

ज़ूनी को यह सब बड़ा ही अजीब लग रहा था। पैरों के नीचे धूल-माटी, सुबह की रोशनी में साफ़ सफ़ेद चमकती सड़क और अपने दोनों तरफ़ फैले और खुले खेत देखती हुई वह अब्बा से चिपटकर चल रही थी।

ज़ूनी की समझ में नहीं आ रहा था कि उस खुले मैदान में भी वह क्यों डर रही है ? जब वे सड़क के दोनों ओर गन्ने के खेतों के बीच से होकर आगे बढ़े तो उसे अच्छा लगने लगा। सरसराती हवा में ऊँचे-ऊँचे गन्नों के खेत हरी दीवारों की तरह लग रहे थे। इस तरह दीवारों ने ही तो उसे इतने दिनों तक बचाकर रखा था।

आख़िर, वे अपने गाँव तक पहुँच गये। गाँव जैसा-का-तैसा ही था। शान्त, धूप में चमकता हुआ, मटमैला और हमेशा की तरह वहीं था। ज़ूनी वहीं खड़ी होकर कुछ देर तक सब देखती रही, घूरती रही। उसे यकीन नहीं हो पा रहा था कि वहाँ सब पहले जैसा ही था। इतने में अब्बा ने कहा, "चलो ज़ूनी, हम सीधे बाज़ार चलें।" वह जल्दी से उनके पास आ गयी।

कुछ औरतें जो अपने पीतल के बर्तनों में नल से पानी भर रही थीं, मुड़कर उनको घूरने लगीं। छोटे-छोटे बच्चे जो मिट्टी में कंचे खेल रहे थे वे भी मुँह उठाकर उन्हें देखने लगे। तभी, उनमें से एक औरत चिल्लायी, "अरे, ये तो ज़ूनी के साथ हबीब मियाँ है।" उसने पानी से भरा घड़ा जल्दी में धड़ाम-से ज़मीन पर रख दिया। घड़ा औंधा पड़ा जिससे पानी चारों तरफ़ फैल गया। इसकी चिन्ता न करते हुये उस औरत ने आकर उन्हें सलाम किया।

दूसरी औरतें भी जल्दी ही पास आ गयीं। "हबीब मियाँ, इतने दिनों तक कहाँ रहे ?" सब

एक साथ ज़ोर-ज़ोर से पूछने लगीं। उनमें से कुछ ज़ूनी की सहेलियाँ टेटा, बीना और सुंदरी की माँ वगैरह थीं। वे झुकीं और ज़ूनी के माथे को चूमती हुईं पूछने लगीं, "ख़ालिदा कहाँ है? रज़िया कहाँ है ? तुम इतने दिनों तक कहाँ रही ? हमने तो सोचा था कि ट्रकों में तुम लोग भी पाकिस्तान चले गये हो।"

"नहीं। हमें तो मालूम भी नहीं था," उन्होंने ताज्जुब से कहा, "अगर हमें मालूम होता तो हम आप लोगों से मिलने ज़रूर आते।"

अब्बा उनकी तरफ़ देखकर मुस्कुराये और फिर गाँव की सँकरी गली में से होते हुए बाज़ार की ओर चल दिये। लोगों ने बाज़ार में उन्हें पहचान लिया। वे लोग दौड़े-दौड़े उनसे मिलने के लिये आये। वे सब आपस में गले मिले और उनसे बहुत सारे सवाल करने लगे। अब्बा ने फिर सबको बताया कि कैसे वे सब चुपचाप छिपकर मस्जिद की चारदीवारी के अंदर रह रहे थे।

आख़िर उन्होंने उन लोगों से पूछ ही लिया, "मेरा घर कैसा है ? मेरे ढोर कैसे हैं ? गोपाल का क्या हाल है ?"

एकाएक सबकी आवाज़ें धीमी हो गयीं। वे लोग दुखी और गम्भीर हो गये और उनके जवाब ज़ूनी को सुनायी नहीं दिये। वह तो चारों ओर का चक्कर लगाने और पहचानी हुई दुकानों को देखने में मस्त थी। वहीं पर एक ठेला खड़ा था, जिस पर मिट्टी के बर्तन में गर्म बालू में मूँगफली भूनी जा रही थी। नुक्कड़ पर एक मिठाई की दुकान थी, जहाँ से उबलते हुए मलाईदार दूध की भाप उठ रही थी। गुलाबी और हरे रंग की मिठाइयों पर मक्खियाँ भिनभिना रहीं थी। पास ही दर्ज़ी की दुकान से फूलदार कपड़े पर मशीन के चलने की आवाज़ आ रही थी और दीवार पर फ़ालसई और बसंती रंग के फ्राक टँगे हुए थे। इतने दिनों के बाद वह यहाँ पर आयी थी।

अब्बा ने अचानक उसके कंधे पर हाथ रखा, "ज़ूनी, संतरे यहाँ छोड़ दें। यह लड़का बेच देगा। क्या तुम अपने स्कूल जाना पसंद करोगी ?"

यह पहली बार हुआ कि स्कूल का नाम सुनकर ही ज़ूनी इतनी खुशी से भर गयी कि काफ़ी दूर बाज़ार के पासवाली सफ़ेद पुती इमारत तक दौड़ गयी। उसे दूर से स्कूल में पाठ पढ़ाने की आवाज़ सुनायी पड़ रही थी—एक साथ पहाड़ों को दोहराने की आवाज़ें। अचानक उसे शर्म-सी महसूस हुई और वह पीछे हटकर अब्बा से चिपट गयी। अब्बा ने उसे धीरे-से धकेलते हुए खुद दरवाज़े से अन्दर झाँका। तब अचानक ही सब चुप हो गये।

इसके बाद ज़ूनी के पुराने टीचर ने, जिनकी मूँछें सफ़ेद थीं, और जिन्होंने धागे से बँधा चश्मा लगा रखा था, हाथ के स्केल को मेज़ पर रखते हुए पूछा, "हबीब मियाँ ! ज़ूनी ! आप लोग कहाँ से आये हैं ? हमने तो सोचा था कि आप लोग पाकिस्तान चले गये होंगे।" सूती आसनों पर छोटी-छोटी लकड़ी की मेज़ों के पास पालथी मारे बैठी छोटी-छोटी लड़कियाँ अपनी जगहों से एकदम कूदकर भागीं और उन्होंने ज़ूनी को चारों ओर से घेर लिया।

उसने अपने चारों ओर उनके गेंहुँए रंग के मुँह पर बिखरती हँसी देखी। उनके मुँह पर खुशी तथा अपनापन देखकर उसकी शर्म एकदम दूर भाग गयी।

"ज़ूनी" अब्बा ने कहा, "मुझे अपना घर और गोहाल देखने जाना है। तुम कुछ देर यहीं ठहरो।"

"क्या मैं नहीं चल सकती ?" ज़ूनी को अपनी गुड़िया मुमताज याद आ गयी थी। उसका मन था कि वह भी अपना पुराना घर देखने जाये।

लेकिन अब्बा ने कहा, "अभी नहीं। मैं थोड़ी ही देर में आकर तुम्हें ले चलूँगा।"

टीचर ने अपना चश्मा उतारते हुए कहा, "अब तो छुट्टी का वक़्त है। तुम सब बाहर ज़ूनी के साथ खेलो – जब तक घण्टी न बजे।" और वे उनकी तरफ़ देखकर बहुत ही प्यार से मुस्कराये। शायद इस तरह से वे कभी नहीं मुस्कराये थे।

बाहर, चौक में सब लड़कियाँ जमा हो गयीं। मुसलमान लड़कियों के पाकिस्तान चले जाने के कारण अब कक्षा में उनकी संख्या बहुत कम हो गयी थी। सिर्फ़ हिन्दू लड़कियाँ ही रह गयी थीं। उन सबके हज़ारों सवालों का जवाब ज़ूनी को देना पड़ रहा था। उसने उनको मस्जिद के बारे में बताया, मोरों के बारे में, आम और नींबू के पेड़ों के बारे में बताया। फिर वह बीना को दोनों हाथ से पकड़ चारों तरफ़ घूमने लगी। उसने उस वक़्त तक चक्कर काटा जब तक कि दोनों चक्कर खाकर गिर नहीं पड़ी। वह चिल्लायी, "तुम को वहाँ आकर देखना पड़ेगा, तुम आओगी न ?"

"हाँ ज़रूर" बीना जवाब देकर जैसे ही उठी, उसकी चूड़ियाँ भी खनखना उठीं। तभी घण्टी बज गयी।

ज़ूनी दरवाज़े के पास खड़ी होकर अब्बा की बाट देखने लगी। उसकी समझ में नहीं आया था कि अब्बा चाहते क्या हैं ? क्या वह चाहते हैं कि ज़ूनी फिर से स्कूल में दाख़िला ले ले। टीचर को भी कुछ मालूम नहीं था। उसने ज़ूनी को कक्षा में दरवाज़े के पास बैठने दिया और दूसरी लड़कियों से झूले के गीत सुनवाने लगीं।

अब्बा बहुत जल्दी वापस आ गये। इससे पहले कि ज़ूनी कुछ सवाल करे, उन्होंने कहा, "चलो, हम बाज़ार वापिस चलें और देखें कि लड़के ने सन्तरों का क्या किया है ? फिर अम्मा के लिये सारा सामान भी तो ख़रीदना है। चलो।" वह इतनी तेज़ चल रहे थे कि ज़ूनी को उनके साथ दौड़कर चलना पड़ रहा था। तेज़ चलने से ज़ूनी की साँस फूल रही थी, लेकिन वह हाँफती हुई भी साथ-साथ चल रही थी।

अब्बा को मूँगफली के ठेले के पास लड़का मिल गया। "मैंने सन्तरों की तीनों टोकरियाँ फलवाले को बेच दी हैं," उसने बड़े गुरूर से कहा। उसने अब्बा को नोटों की गड्डी थमा दी, जिसे उन्होंने बहुत सम्भालकर जेब में रख लिया। अब्बा को वे रुपये मैनेजर को देने थे।

उसके बाद वे दोनों ख़रीदारी के लिये एक दुकान से दूसरी दुकान पर गये। अम्मा के लिये

सामान ख़रीदने में ज़ूनी को बहुत ही मज़ा आ रहा था। उन्होंने नयी कड़ाही, कलछी, इलायची, लौंग, दालचीनी—यह सारा सामान ख़रीदा। रज़िया के काढ़ने के लिये और गिलाफ़ों का कपड़ा ख़रीदने के बाद भी अब्बा के पास कुछ रुपये बच गये थे। और उनके पास ख़रीदारी के लिये वक़्त भी था। अब वे ज़ूनी को चूड़ीवाले की दुकान पर ले गये। चूड़ीवाला डाकघर के पास पालथी मारे बैठा था। अब्बा ने ज़ूनी से कहा कि वह छह चूड़ियाँ पसन्द कर ले।

"कोई भी रंग", जूनी ने चिल्लाकर पूछा, "ओह अब्बा, लाल नहीं, नीली भी नहीं ! अब्बा ! क्या इनके बदले मैं मूँगफली ख़रीद सकती हूँ—या मिठाई ले सकती हूँ ?"

"हाँ हाँ," वे हँसें, "लेकिन पहले छह चूड़ी रज़िया और छह चूड़ी अम्मा के लिये ख़रीदने में मेरी मदद करो।" वे दोनों चूड़ीवाले के पास उकड़ूँ बैठ गये। तब उन्होंने हल्के नीले रंग की चूड़ी रज़िया के लिये और सुनहरे मीनेवाली लाल रंग की चूड़ी अम्मा के लिये ले लीं। चूड़ीवाले ने चूड़ियों के चमकते खनखनाते दोनों जोड़ों को लाल धागे से बाँध कर, दो अलग-अलग डिब्बों में रख दिया।

इसके बाद जूनी जैसे नाचती हुई मूँगफली के ठेले के पास पहुँची और गरम-गरम भुनी हुई मूँगफलियों का एक दोना उसने ख़रीद लिया। मूँगफली की सोंधी खुशबू ने उसकी नाक में गुदगुदी पैदा की जिससे उसकी नाक खरगोश की नाक की तरह सिकुड़ गयी। तभी अब्बा ने हलवाई की दुकान पर जाकर बूँदी के लड्डुओं की एक टोकरी लाकर ज़ूनी के हाथ में पकड़ा दी। लड्डू देखकर तो ज़ूनी ने एकदम किलकारी ही मार दी, क्योंकि मिठाइयों में उसे लड्डू ही सबसे अच्छे लगते थे।

दोनों के साथ बाकी पोटलियों में से कुछ को उन्होंने बग़ल में दबाया और कुछ को सिर पर रखा और फिर वे गन्नों के खेतों में से होते हुए सड़क पर आ गये। जूनी रास्ते भर मूँगफली खाती रही। मस्जिद के चौराहे पर पहुँचने तक उसके पास बहुत ही कम मूँगफली रह गयी।

अम्मा दरवाज़े के पीछे अन्दर खड़ी हुई उनकी बाट देख रही थी। जैसे ही वे अन्दर आये चौकीदार ने दरवाज़े की चिटकनी लगा ली। अम्मा चिल्लायी, "ओह ? तुम लोग ठीक तरह आ गये ? क्या सब कुछ ठीक है अब ?"

"काफ़ी शान्ति है" अब्बा ने एक के बाद एक सामान पकड़ाते हुए कहा—"और सब लोग बहुत ही मेहरबान हैं।"

"और हमारा घर ?" अम्मा चिल्लायी "और हमारे ढोर ? क्या तुमने उन्हें देखा है ?"

अब्बा ने उसकी तरफ़ देखकर धीरे-से कहा, "ख़ालिदा ? घर जल गया है, और किसी को नहीं मालूम कि ढोरों को कौन ले गया है। गोपाल ने सब कुछ बचाने की बहुत कोशिश की, पर चोरों के पास छुरे थे। उन्होंने गोपाल को भी मार डाला और भाग गये।"

कुछ देर के लिये तो सब लोग चुपचाप सन्न होकर यह सोचते हुए खड़े रह गये कि गोपाल उनके घर और ढोरों की देख-रेख करने की वज़ह से मारा गया है। जूनी ने मूँगफली खानी बन्द कर

दी। उसकी आँखों में आँसू छलक आये। अब उसने अपनी गुड़िया मुमताज की बाबत पूछना भी ठीक नहीं समझा।

"यह तो ग़ज़ब हो गया," अम्मा ने धीरे से कहा, "क्या घर बिल्कुल ही जल गया है ?" उन्हें यक़ीन नहीं हो पा रहा था कि सब ख़त्म हो गया है।

अब्बा ने सिर हिलाया और बोले, "चलो घर चलें, वहीं मैं तुम्हें सब बताऊँगा।"

लेकिन अम्मा सामान के बंडलों को पकड़कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। उनके गालों पर आँसू बहने लगे थे। बूढ़े चौकीदार की बीवी ने जब अपने खुले दरवाज़े में से यह सब देखा तो कहा, "यह सब खुदा की मर्ज़ी है ख़ालिदा, खुदा की मर्ज़ी।"

"और, हम बिना घर के भी तो नहीं है" अब्बा ने उन्हें याद दिलाया, "अब तो हमारे पास यहाँ भी रहने के लिए एक घर है, एक अच्छी जगह। यहाँ हम खतरे से बाहर हैं और फिर हमारे ऊपर खुदा की मेहरबानी है। हम इस बाग़ में बड़े मज़े से रहते हैं। रहते हैं न ज़ूनी ?"

उसी समय ज़ूनी ने दीवार से बाग़ की तरफ़ फड़फड़ाकर जाते हुए एक मोर को देखा। वह चिल्लाती हुई उसके पीछे भागी, "मुझे यहाँ अच्छा लगता है, मुझे यहाँ अपने गाँव से भी ज्यादा अच्छा लगता है।" उसने रज़िया को भी झोपड़ी के बाहर खड़े होकर अपना इन्तज़ार करते पाया। ज़ूनी ने उसे आवाज़ देकर कहा, "देख रज़िया, हम क्या-क्या लाये हैं—चूड़ी और लड्डू, बूँदी के लड्डू और चूड़ी।"

उन दिनों नीला फाटक खुला रहता था और ज़ूनी अपनी मर्ज़ी से अन्दर-बाहर आ जा सकती थी। उस साल जाड़ों में वह पैदल स्कूल जाती थी, और बहुत ही खुश थी, क्योंकि खेलने और काम करने के लिए वहाँ सब कुछ था। घर से बाहर भी वह आज़ादी से जा सकती थी। घर लौटते समय वह अक्सर खेत से गन्ना तोड़ लेती और उसका मीठा रस चूसती हुई आती। शाम के समय कोयले की अँगीठी के पास बैठकर रज़िया उसके पिछले सबक़ को दोहराने में मदद कर देती थी, जो स्कूल न जाने की वजह से छूट गये थे। जाड़ों में दिन बहुत छोटे होते थे, इसलिये ज़ूनी को इन दिनों बाग़ में खेलने का वक़्त बहुत कम मिलता था। न तो वह मोर पंख ही ढूँढ़ पाती थी और न ही उसे मस्जिद जाने का वक़्त मिलता था।

एक इतवार को जब वह संगमरमर की सीढ़ियाँ चढ़कर मुँडेर पर चढ़ी और वहाँ ख़ूबसूरत मेहराबों के बीच में बैठकर मैदान को देखने लगी तो उसे सब कुछ सुनहरा ही दीख रहा था। अब गहरे पीले और बसन्ती रंग की सरसों फूलने लगी थी।

जब ज़ूनी, अम्मा और रज़िया को सरसों के फूलने की ख़बर देने जाने लगी तो उसने अपने पैरों के बिल्कुल पास मोर की आवाज़ सुनी। वह रुक गयी। वहीं उसने गुस्से में भरी एक मोरनी को रास्ता पार करते हुए देखा; बाद में वह घनी झाड़ियों में जाकर खो गयी। मोरनी के पीछे



एक-दो-तीन-चार-पाँच छोटे-छोटे बच्चे जा रहे थे। ज़ूनी लुकाट के पेड़ के पास, चुपचाप खड़ी होकर उनकी चीं-चीं सुनती रही। तभी उसे गुस्से में भरी मोरनी की आवाज़ भी सुनायी दी। थोड़ी ही देर में सारे चूज़े झाड़ी और सूखे पत्तों के बीच चोंचे मारते गायब हो गए। अब ज़ूनी उन्हें देख नहीं सकती थी।

उसके बाद अपने आप पर क़ाबू पाकर ज़ूनी दौड़ती हुई ढोरों के बाड़े के पास पहुँची। वहाँ अब्बा एक छोटे बछड़े की ब्रश से सफ़ाई कर रहे थे। बछड़ा कुछ ही दिनों का था। अपने सुन्दर और मुलायम पैरों पर वह ठीक से खड़ा भी नहीं हो पा रहे थे। उसके लम्बे और गुलाबी कान उसके छोटे-से मुलायम सिर पर सीधे नहीं हो पा रहे थे। बछड़ा, अपनी माँ के थनों से दूध पीने की कोशिश कर रहा था। उसे देखकर ज़ूनी सरसों के फूलने की बात तो भूल गयी लेकिन वह मोरनी और उसके चूज़ों के बारे में अब्बा को बताने लगी।

''आजकल वे यहाँ चारों तरफ़ होंगे,'' अब्बा ने कहा, ''आजकल उनका मौसम है। इन मोरों को देखकर किसान इतने खुश नहीं होते हैं, जितना कि तुम हो रही हो, क्योंकि उसका अनाज चरने के लिए मोरों की तादाद बढ़ जाती हैं। तुम्हें मालूम है—ये बड़ी चिड़ियाँ बहुत-सा अनाज खा जाती है?''

''मैं उनको चारा दूँगी,'' ज़ूनी ने कहा, ''मैं लुकाट के पेड़ के नीचे चूज़ों के लिए दाना डाल दूँगी। मुझे लगता है वे यहीं कहीं रहते है।''

''तुम्हें यह सब करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी,'' अब्बा हँसे ''उनकी माँ तो देख ही लेगी कि उन्हें खाने को काफ़ी मिल जाये।''

ज़ूनी ने उस दिन जो कुछ भी देखा था, अगले दिन स्कूल जाकर बच्चों को सब बताने के लिये वह उतावली हो रही थी। सुन्दरी को ज़ूनी से जलन होने लगी थी, क्योंकि वह इतनी अच्छी बातें कर रही थी। सुन्दरी बोली, ''मेरी मुर्ग़ी के भी चूज़े हैं—सब मिलाकर बारह हैं और मेरी बकरी का भी एक भूरे मख़मल जैसी चिकनी ख़ालवाला मेमना है।''

लेकिन टेटा और बीना ने सोचा कि मोरनी के चूज़े ज़्यादा खूबसूरत होंगे। इसलिये उन्होंने पूछा, ''ज़ूनी, क्या हम उन सबको आकर देख सकते हैं? क्या हम तुम्हारे घर जाकर मोरोंवाला बाग़ नहीं देख सकते?''

''ज़रूर... ज़रूर'' ज़ूनी ने जवाब दिया, ''आना ज़रूर आना।''

''मैं मस्जिद कभी नहीं जाती—मैं तो उसके पास भी नहीं जाऊँगी।'' सुन्दरी ने नाक सिकोड़ी।

लेकिन टेटा और बीना स्कूल के बाद सीधे अपने घर दौड़ी गयीं और अपनी-अपनी माँ से उन्होंने ज़ूनी के साथ उसके घर जाने की इज़ाज़त ले ली। उस दिन दोपहर में तीनों लड़कियाँ गन्ने के खेतों के बीच से दौड़ती हुई जा रही थीं, लेकिन गन्ने के खेतों में कटाई हो रही थी इसलिये इधर-उधर, थोड़े-बहुत ही गन्ने रह गये थे। अब उन खेतों के पार नीले आसमान के तले सरसों से

फूले हुए खेतों को वे आराम से देख सकती थीं। वे पीले परदे की तरह दिख रहे थे। ज़ूनी को याद आया कि पिछले साल उसकी अम्मा ने उसका दुपट्टा पीले रंग में रँगा था। बसन्त पंचमी के मेले में वह उसे ही ओढ़कर गयी थी।

तीनों लड़कियाँ जल्दी से नीले दरवाज़े के अन्दर घुस गयीं। यह पहला मौक़ा था, जब दो हिन्दू लड़कियाँ उस मस्जिद की चारदीवारी के भीतर आयी थीं। वे दोनों कुछ झिझक रही थीं और डरी-डरी-सी थीं, क्योंकि उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें ? कैसे करें ? तब ज़ूनी पक्के चौक से होती हुई उन्हें सन्तरे और लुकाट के पेड़ों के बीच से अपने घर में ले गयी। ज़ूनी भी उन दोनों को अपने घर लाने में हिचक रही थी। वह सोच रही थी कि उसकी ये सहेलियाँ, उसकी छोटी-सी एक कमरे वाली, मिट्टी और फूस की बनी झोपड़ी को देखकर क्या सोचेंगी। परन्तु उसे इस बात का यक़ीन था कि मोरों के पंखों से भरी छत देखकर उन्हें ज़रूर अच्छा लगेगा। उसने मन में तय कर लिया और वह बाग़ के बीच से उन्हें चौक के अन्दर ले गयी।

लेकिन, वह उन्हें अपने घर के अन्दर नहीं ले जा सकी, क्योंकि आज चौक मेहमानों से भरा था। अम्मा, दरवाज़े के बीच में बैठी खूब हँस-हँसकर बातें कर रही थी। रज़िया उनके एकदम पीछे बैठी हुई, शरमायी-सी झाँक रही थी। मेहमान कच्चे चौक में बिछे क़ालीनों पर बैठे शरबत पी रहे थे तथा कटे हुए अमरूद खा रहे थे।

ज़ूनी रुककर हैरानी से देखने लगी, तब उसकी अम्मा ने उसे आवाज़ दी, "ज़ूनी आओ, देखो पाकिस्तान से हमारे दोस्त हमसे मिलने के लिये आये हैं। आओ, इन्हें सलाम वालेकुम कहो।"

ज़ूनी ने झुककर बड़े अदब से सबको सलाम किया और यह जानने की कोशिश की कि वे कौन लोग हैं। पर वे लोग उनके गाँव के दोस्तों में से नहीं थे। वह जानती भी नहीं थी कि वे कौन हैं, उसे शर्म आने लगी। उसकी समझ में नहीं आया कि वे लोग क्यों आये हैं ! उसने मुड़कर लड़कियों से धीरे-से कहा, "चलो, चलकर मोरों को ढूँढ़ें। फिर जब हम लोग लौटकर यहाँ आयेंगे तब मैं तुम्हें अमरूद दूँगी।"

तब उन तीनों ने सन्तरे के पेड़ों के नीचे मोरपंखों को ढूँढ़ने में और गोहाल में नये बछड़े को देखने में ही दोपहरी बिता दी।

"यहाँ सब कुछ सुन्दर है, ज़ूनी !" बीना ने सलेटी रंग के गुम्बज को और नारंगी रंग के फूलों से लदी बेल को देखते हुए कहा। मस्जिद का सफ़ेद गुम्बज दीवारों और पेड़ों से ऊपर चमक रहा था। यह हमारे गाँव से भी कहीं ज़्यादा खूबसूरत है।"

"लेकिन हमने मोरनी और उसके चूज़े तो देखे ही नहीं," टेटा बड़बड़ायी।

ज़ूनी को भी, अपने दोस्तों को मोरनी के बच्चे न दिखा पाने की वजह से निराशा हुई। उस समय सरसों के सुनहरे खेतों के पीछे सूरज डूब रहा था और अँधेरा होने से पहले ही लड़कियों को घर वापस जाना था।

किन्तु जब लुकाट के पेड़ों के बीच से होकर वे वापिस जा रहीं थीं, तभी उन्होंने कुछ फड़फड़ाने, कुरेदने और चीं चीं जैसी आवाज़ें सुनीं। तब जूनी ने धीरे-से झुककर घनी डालों को अलग-अलग कर दिया। दोनों लड़कियाँ भी उसके पास ही झुक गयीं और झरोखे में से झाँकने लगीं। वहीं परछाइयों में, उन्होंने मोरनी को अपने चूज़ों के साथ मुलायम भूरे ढेर में घुसते देखा।

टेटा चिल्लाना चाहती थी जिससे कि चूज़े डरकर बाहर निकल आयें और वे उन्हें देख सकें। लेकिन जूनी ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। "वे सो रहे हैं, उन्हें जगाना नहीं चाहिये," उसने कहा, "चलो, अब घर चलें। अपने जमा किये मोर पंखों में से मैं कुछ तुमको दे दूँगी।"

जूनी उन्हें घर ले आयी। उसने देखा कि सारे मेहमान चले गये हैं। अम्मा और रज़िया क़ालीन पर अकेली बैठीं पहले की तरह आपस में हँस-हँस कर बातें कर रही हैं। अम्मा ने जब जूनी की सहेलियों को देखा तो पुकारा, "बीना, टेटा आख़िर तुम लोग आ ही गयीं। तुम्हारी माँ और बहनें कैसी हैं? आओ, मुझे अपने घरवालों की सारी ख़बर दो।" रज़िया उठकर उनके लिये एक प्लेट में अमरूद काटकर ले आयी। और जब वे अम्मा से बातें कर रही थीं। तभी जूनी अन्दर जाकर कुछ मोरपंख ले आयी।

तब तक अँधेरा होने लगा था। बीना ने चौंकते हुए उठकर कहा, "हमें सारे रास्ते दौड़ते हुए घर जाना होगा टेटा। बहुत देर हो गयी है।" वे जल्दी-जल्दी घर के लिये चल पड़ी। जूनी उनके आगे-आगे नीला फाटक दिखाने के लिए चली गयी।

जैसे ही वे दरवाज़े के बाहर पक्के चौक में क़दम रखनेवाली थीं कि उन्होंने अपने सिर के ऊपर एक तेज़ आवाज़ सुनी। उन्होंने ऊपर देखा तो उन्हें बड़ा शाही मोर दीवार पर बैठा हुआ दिखायी दिया। वह कमानी की तरह तनी हुई अपनी सुनहरी गर्दन पर अपना मुकुट तथा पंख फड़फड़ा रहा था और अपनी सुन्दर नीली पूँछ को फैलाये हुए बैठा था। तभी एक दूसरे मोर ने उसकी आवाज़ का उत्तर दिया, फिर एक दूसरे ने, फिर एक मोर और मोरनी पंख फड़फड़ाकर दीवार पर चढ़ गये। सभी मोर डर के मारे एक झुण्ड में चल रहे थे। छोटी लड़कियाँ चुपचाप एक तरफ़ छिपकर, बिना एक शब्द मुँह से निकाले, एक दूसरे का हाथ पकड़े सब नज़ारा देख रहीं थी। उन्होंने देखा कि दो और मोर कहीं से आकर उनके पास बैठ गये हैं फिर तीनों मोरनियाँ भी आ गयीं। अब दीवार पर बैठे मोर और मोरनियों का झुण्ड राजदरबार-सा लग रहा था। लगता था जैसे राजा, रानियाँ और कुलीन घराने के लोग जवाहरातों से जड़े रेशमी कपड़े पहने वहाँ बैठे हुए हों। तब सब मोरों ने एक दूसरे के आगे सिर झुकाया, अपने पंख फैलाये और उन्हें फड़फड़ाते हुए सलेटी पत्थर की दीवार पर वे सचमुच नाचने लगे। काफ़ी देर के बाद एक मोर दीवार के एक तरफ़ नीचे की ओर जाकर कुएँ के पास की तलैया में से पानी पीने लगा, फिर सभी मोर उसके पीछे-पीछे चले गये। उन सबने तलैया के चारों तरफ़ घेरा बना लिया। ऐसा लगता था जैसे किसी गोलमेज़ के चारों ओर शाही

मेहमानों का कोई घेरा हो। मोरों ने अपनी पूँछ के पंख इस तरह फड़फड़ाये मानों कि वे हीरे जवाहरात से जड़े पंखे हों। वे सभी मोर तलैया के पास नाच रहे थे और कभी-कभी गर्दन उठाकर आवाज़ भी लगा देते थे।

छोटी लड़कियाँ हाथ में हाथ डाले एक दूसरे से सटकर चुपचाप साँस रोके वहीं खड़ी रहीं। कुछ देर बाद, आख़िर मोरों की पार्टी ख़त्म हो ही गयी। फिर वे सब एक के बाद एक बाग़ में घनी पत्तियोंवाली झाड़ियों में चले गये।

तब तीनों लड़कियों ने आड़ में से बाहर निकलने की हिम्मत की और वे नीले दरवाज़े की तरफ़ चल पड़ीं। वे बहुत ही खुश थीं। वे हँसती जा रही थीं और कहती जा रही थीं कि ऐसा खूबसूरत नज़ारा तो उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। टेटा ने कहा, "यह तो एकदम पार्टी-जैसा था।"

"या फिर एक मेले की तरह !" बीना, दरवाज़े के बाहर जाती हुई बोली।

"फिर आना, फिर आना," ज़ूनी ने उनसे जाते हुए कहा। लड़कियाँ खाली खेतों के बीच से जल्दी-जल्दी घर की तरफ़ जा रही थीं। खेतों में गन्ने की पत्तियाँ ढेरों में जमा करके जलायी जा रही थीं। ज़ूनी जब पक्के चौक से होती हुई वापिस आयी तो चारों तरफ़ बने कमरों के चूल्हों में आग जलाई जा चुकी थी। कुछ लोग चौकीदार के दरवाज़े के पास बैठे बातें कर रहे थे। पता नहीं, ये कौन लोग हैं ? ज़ूनी यह सोचते हुए, जल्दी-जल्दी घर के अन्दर चली गयी।

जब वह वापस आयी तो अम्मा चूल्हे के पास बैठी हलवा बना रही थी। आँच की गर्मी और चौंध से उनका मुँह चमक रहा था। उन्होंने ज़ूनी को बताया कि ख़ास त्यौहारों पर भारत सरकार इन लोगों को इस मस्जिद में भी आकर नमाज़ पढ़ने की इज़ाज़त दे देती है। "ज़ूनी, ये लोग लाहौर से आये हैं और अली की ख़बर भी लाये हैं।" फिर उन्होंने रज़िया की ओर देखा और एक अजीब-सी खुशी से दोनों मुस्कुरा पड़ी। "अली ने एक संदेशा भेजा है ज़ूनी," खुशी से हँसते हुए उन्होंने फिर कहा, "अली खुद भी कुछ दिनों में यहाँ आ रहा है। वह ईद पर यहाँ आयेगा और हम सब मिलकर ईद मनायेंगे और फिर शादी होगी।"

"लेकिन अम्मा, यह तो सब बहुत जल्दी-जल्दी करना पड़ेगा। इतना वक़्त ही कहाँ है।" रज़िया ने थोड़ा परेशान होते हुए कहा।

"नहीं नहीं, वक़्त कम नहीं है। मैं जल्दी-जल्दी सब करूँगी, बड़ी तेज़ी से। तुम देखना कि मैं सब कैसे करती हूँ।" अम्मा ने यकीन दिलाया, "और शादी ईद के बाद होगी ज़ूनी। तुम्हारी बहन की शादी है न ज़ूनी ?"

ज़ूनी उनके पास बैठ गयी। मगर उसकी समझ में अब तक यह नहीं आया था कि आख़िर यह माजरा क्या है। फिर भी उसकी आँखें चमकने लगी थीं। हलवे की खुशबू से उसके मुँह में पानी आने लगा था।

"ज़ूनी, तुमको भी नये कपड़े मिलेंगे", अम्मा ने कहा।

"मुझे ? मैंने तो सोचा था कि सिर्फ़ रज़िया को ही मिलेंगे," ज़ूनी ने ताज्जुब से कहा।

"ओह, रज़िया के लिये दुल्हन के कपड़े बनेंगे। अब्बा को बाज़ार से गरारे और कमीज़ के लिये गुलाबी साटन लानी होगी और दुपट्टे के लिये रुपहला गोटा भी। इनसे मिलता चाँदी का नेकलेस तो मेरे पास है ही, रज़िया ! और ज़ूनी, तुम्हारे लिये हम क्या ख़रीदें ? मोर पंखों का रेशम ख़रीद लें ? क्या तुम अपने प्यारे मोरपंखों के रंग का गरारा पहनना पसन्द करोगी और अपने दपुट्टे पर सुनहरा गोटा लगवाओगी ? क्या हम यह सब बनवा लें ?" अम्मा ने हँसते हुए पूछा।

अम्मा को हँसता हुआ देखकर ज़ूनी को बहुत ही खुशी हुई। साथ ही, रज़िया को भी मुस्कुराता हुआ देखकर और अपने आपको मोरपंखी रंग के कपड़ों में सजा सोचकर तो वह मारे खुशी से झूम उठी। थोड़ी देर तक तो वह कुछ भी न बोल सकी।

अम्मा ही आगे बोलती रही, "हाँ,ज़ूनी एक छोटी-सी मोरनी बनकर शादी में नाचेगी।" यह कहते हुए उन्होंने मुट्ठी भर मेवा और किशमिश हलवे में डाल दिये और कहा, "अच्छा, दौड़कर जाओ और अपनें अब्बा को बुला लाओ। पहले सब लोग मिलकर गरम-गरम हलवा तो खा लें।"

मारे खुशी के ज़ूनी बाहर दौड़ गयी।



1947 का भारत विभाजन। अपने घर-गाँव और वतन से दूर हो गये बहुत-से परिवारों को न जाने कितनी तकलीफ़ें उठानी पड़ीं। दंगों और फ़सादों में कितने लोग मारे गये और कितनों का पता नहीं चला। बच्चों को अपने दोस्तों, घरों और घरौंदों से, न चाहते हुए भी बिछड़ना पड़ा। **मोरों वाला बाग़** बाल उपन्यास की छोटी-सी नायिका जूनी भी अपनी नन्हीं-सी दुनिया से अलग-थलग पड़ गई। जान-माल के नुक़सान से बचने के लिए उसका परिवार गाँव छोड़कर निकल भागा।

सौभाग्य से जूनी का परिवार भी भटकते-भटकते ऐसे गाँव में जा पहुँचा जहाँ के लोग बड़े ही भले थे। इस गाँव के पास मोरों का बड़ा ही खूबसूरत बाग़ था। इन मोरों के साथ जूनी और दूसरी सारी लड़कियाँ तितलियाँ बनकर खेलती रहीं। धीरे-धीरे हालात सुधरने लगे और जूनी को भी अपने परिवार के साथ अपने गाँव लौटना पड़ा। तब उसे लगा कि वह जिन मोरों के साथ इतने दिनों तक जिस गाँव में रही—वह भी उसे कभी पराया नहीं लगा। और उसका दिल **मोरों वाला बाग़** कभी नहीं भुला पाया।



ISBN 81-7201-491-0
9 788172 014919

तीस रुपये